हमारे हुज़ूर

सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम

इरफ़ान ख़लीली

अनुवाद

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

क्या | कहाँ

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

कुछ किताब के बारे में

यह किताब मर्कज़ी दरसगाह इस्लामी, रामपुर (यू.पी.) के उस्ताद जनाब इरफ़ान ख़लीली साहब की उर्दू किताब 'हमारे हुज़ूर (सल्ल.)' का हिन्दी अनुवाद है। इस किताब की अहमियत और खुसूसियत पर रौशनी डालते हुए लेखक खुद लिखते हैं।

"बहुत दिनों से मेरी यह ख़ाहिश थी कि सीरत की एक ऐसी किताब लिखूँ, जो बच्चों और कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए फ़ायदेमन्द साबित हो, और जिसके ज़रिए हुज़ूर (सल्ल.) की पाक ज़िन्दगी का एक ख़ाका उनके दिलों में बैठ जाए और ज़ेहनी तौर पर उन्हें कोई बोझ भी महसूस न हो। इस बात को सामने रखते हुए सीरत की यह छोटी-सी पुस्तिका तैयार की गई, जिसमें ये ख़ूबियाँ पाई जाती हैं--

(1) ज़बान सादा और आसान इस्तेमाल की गई है।

(2) अन्दाज़ ऐसा इस्तेमाल किया गया है जिसमें बच्चों में दिलचस्पी पैदा हो।

(3) ग़ैर-ज़रूरी तफ़सील से बचते हुए हर विषय को एक पेज में ख़त्म करने की कोशिश की गई है।

(4) ऐसे जुमलों (वाक्यों) को बयान नहीं किया गया है जो बच्चों के लिए उकताहट का सबब बनें।

(5) सबसे ख़ास ख़ूबी यह है कि प्यारे नबी (सल्ल.) की पाक ज़िन्दगी से लगाव पैदा करने की कोशिश की गई है।"

बेशक लेखक को अपने मक़सद में बड़ी कामयाबी मिली है और उर्दू में बच्चों और कम पढ़े-लिखे लोगों के लिए सीरत की एक मुफ़ीद किताब सामने आ गई है। इस किताब की इन्हीं ख़ूबियों को देखते हुए ज़रूरत महसूस की गई कि इसका हिन्दी तर्जमा किया जाए, ताकि हिन्दी जगत भी इससे भरपूर फ़ायदा उठा सके। अल्लाह ने यह ख़िदमत मुझसे ली, इसपर मैं अल्लाह का

शुक्र अदा करता हूँ।

कोशिश की गई है कि हिन्दी तर्जमा भी अस्ल किताब की तरह सादा और बहुत ही आसान हो। अल्लाह से दुआ है कि इस कोशिश को क़बूल फ़रमाए और पढ़नेवालों को इस किताब से ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ायदा पहुँचे।

लेखक ने यह किताब तैयार करते वक़्त इन किताबों को सामने रखा है—

1. सीरत : इब्ने-हिशाम
2. सीरतुन्नबी (सल्ल०) : अल्लामा शिब्ली
3. रह्मतुल लिल-आलमीन (सल्ल०) : क़ाज़ी सुलैमान मनसूरपुरी
4. सीरत सरवरे-आलम (सल्ल०) : मौलाना मौदूदी (रह०)
5. सीरतुस्सहाबियात : मौलाना सईद अनसारी

2 अप्रैल 1984 ई०

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली)

प्यारे नबी (सल्ल॰) का देश

ज़रा एशिया का नक़्शा तो देखो। ठीक दक्षिण-पश्चिम में एक बहुत बड़ा-सा प्रायद्वीप दिखाई दे रहा है। इसी का नाम अरब है। यही तो हमारे प्यारे नबी मुहम्मद (सल्ल॰) का देश है। इसके पूरब में फ़ारिस की खाड़ी और अरब सागर है। हाँ-हाँ वही अरब सागर जो हमारे देश के पश्चिम में है। यही तो वहाँ तक फैला हुआ है। पश्चिम में लाल सागर है, जो ऐशिया महाद्वीप को अफ़रीक़ा महाद्वीप से अलग करता है, और दक्षिण में हिन्द महासागर है। यह सुनकर तुम्हें हैरत होगी कि इतना बड़ा प्रायद्वीप और उसमें दरिया एक भी नहीं। हर तरफ़ सूखी पहाड़ियाँ हैं, जिनपर पेड़-पौधे नाम को भी नहीं उगते। इसके अलावा चटियल मैदान हैं, जो रेत से अटे हुए हैं, इन्हीं को रेगिस्तान कहते हैं।

कुछ तटवर्ती क्षेत्र और घाटियाँ ऐसी हैं जो बहुत उपजाऊ हैं। उनमें गेहूँ, खजूर, अंगूर और दूसरे फल बड़ी तादाद में पैदा होते हैं। यहाँ की ख़ास सवारी ऊँट और घोड़े हैं। रेगिस्तान में सफ़र के लिए तो ऊँट ही काम आता है। इसी लिए उसको रेगिस्तान का जहाज़ कहते हैं। अरबी घोड़े तो सारी दुनिया में मशहूर हैं। वे बहुत ही ख़ूबसूरत, वफ़ादार और तेज़-रफ़्तार होते हैं।

दो शहर

यूँ तो अरब में बहुत-से शहर हैं, लेकिन दो शहर सारी दुनिया में मशहूर हैं— (1) मक्का (2) मदीना।

मक्का में तो अल्लाह तआला का पहला घर—काबा है, जिसकी तरफ़ मुँह करके हम सब नमाज़ पढ़ते हैं और जहाँ सारी दुनिया के मुसलमान हज करने जाते हैं। यहीं प्यारे नबी (सल्ल॰) पैदा हुए थे, और अपनी मुबारक ज़िन्दगी के 53 साल गुज़ारे थे। यह शहर लाल सागर के तट से सिर्फ़ चालीस मील के फ़ासले पर एक घाटी में बसा हुआ है। चारों तरफ़ पहाड़ियाँ-ही-पहाड़ियाँ हैं। ज़मीन सख़्त और पथरीली है, इसी लिए यहाँ कुछ पैदा नहीं होता।

मदीना, जिसका पुराना नाम यसरिब था, मक्का से लगभग तीन सौ मील

दूर उत्तर की तरफ़ है। प्यारे नबी (सल्ल०) हिजरत करके मदीना ही तशरीफ़ ले गए थे और अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी दस साल यहीं गुज़ारे। मस्जिदे-नबवी, जिसको प्यारे नबी (सल्ल०) ने बनवाया था, उसी शहर में है। इसी मस्जिद के एक हिस्से में हुज़ूर (सल्ल०) की मुबारक क़ब्र है। यहाँ खजूरों के बाग़ बड़ी तादाद में है। कहते हैं कि पहले यहाँ की जलवायु बहुत ख़राब थी, प्यारे नबी (सल्ल०) की दुआ से अल्लाह ने उसे खुशगवार बना दिया। यह पूरा इलाक़ा, जहाँ ये दोनों शहर– मक्का और मदीना– आबाद हैं, हिजाज़ कहलाता है।

प्यारे नबी (सल्ल०) का ख़ानदान

हज़रत इबराहीम (अलैहि०) को तुम जानते ही हो। वे अल्लाह के बहुत ही प्यारे पैग़म्बर थे। उनके दो बेटे थे। हज़रत इसमाईल (अलैहि०) और हज़रत इसहाक़ (अलैहि०)– ये दोनों भी पैग़म्बर थे। हमारे नबी (सल्ल०) हज़रत इसमाईल (अलैहि०) की औलाद से थे।

प्यारे नबी (सल्ल०) के अब्बू मियाँ का नाम जनाब अब्दुल्लाह और अम्मी जान का नाम आमिना था। नबी (सल्ल०) के दादा जान जनाब अब्दुल-मुत्तलिब क़ुरैश क़बीले के सरदार थे। क़ुरैश अरब का बहुत मशहूर और इज़्ज़तवाला ख़ानदान था, इसलिए काबा की देख-भाल और हाजियों की ख़िदमत इसी ख़ानदान के सिपुर्द थी। अरबवाले क़ुरैश ख़ानदान की बहुत इज़्ज़त करते थे।

पैदाइश

प्यारे नबी (सल्ल०) की पैदाइश से कुछ महीने पहले उनके (सल्ल०) के अब्बू जनाब अब्दुल्लाह को कारोबार के लिए सीरिया देश जाना पड़ा। वापसी में वे मदीना में ठहर गए। यहाँ प्यारे नबी (सल्ल०) का ननिहाल था। फिर वे ऐसे बीमार पड़े कि कुछ दिनों के बाद उनका इन्तिक़ाल हो गया। जब यह ख़बर अब्दुल-मुत्तलिब को मिली तो उन्हें बहुत दुख हुआ, क्योंकि अपने बेटों में वे सबसे ज़्यादा उन्हीं को चाहते थे। यह ख़बर सुनकर प्यारे नबी की अम्मी जान आमिना पर एक बिजली-सी गिरी, मगर वे कर ही क्या सकती

थीं। सब्र से काम लिया और ख़ामोश रहने लगी।

धीरे-धीरे रबीउल-अव्वल का महीना आ गया। उसके दूसरे हफ़्ते में सोमवार के दिन सुबह तड़के प्यारे नबी (सल्ल॰) का जन्म हुआ। जब उनको दादा जान की गोद में दिया गया तो वे उनकी सूरत देखकर हैरान रह गए, क्योंकि इससे पहले उन्होंने किसी बच्चे का चेहरा इतना भोला, इतना प्यारा और इतना नूरानी नहीं देखा था। वे देर तक टकटकी लगाए देखते रहे और कुछ सोचते रहे। फिर ख़ानदान के रिवाज के ख़िलाफ़ दादा जान ने अपने प्यारे पोते का नाम 'मुहम्मद' रख दिया। आमिना ने उनका नाम 'अहमद' रखा था।

इस तरह हमारे हुज़ूर (सल्ल॰) के दो नाम हैं, 'अहमद' और 'मुहम्मद'।

यतीम की परवरिश

मक्का के बड़े घरानों में यह रिवाज था कि वे अपने मासूम बच्चों को परवरिश और देख-भाल के लिए देहातों में भेज देते थे, ताकि वहाँ की जलवायु में उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी हो जाए। वे ख़ालिस अरबी रंग-ढंग और सही भाषा सीख जाएँ।

जिस साल प्यारे नबी (सल्ल॰) पैदा हुए, उस साल भी रिवाज के मुताबिक़ देहात से औरतें आईं। उन्होंने दौड़-धूप करके दौलतमन्द घरानों के बच्चों को हासिल कर लिया। उनमें बनू-साद क़बीले की एक औरत हलीमा सादिया भी थीं। उनकी सवारी का ऊँट बहुत कमज़ोर और बीमार था। इसलिए वे मक्का में सबके बाद पहुँचीं। वे इधर-उधर फिरती रहीं, मगर कोई बच्चा न मिल सका। थक-हारकर वे अपने ख़ेमे में वापस आ गईं। उनके शौहर हारिस ने उनको दुखी देखकर पूछा—

"क्यों हलीमा! क्या बात है, क्या कोई बच्चा नहीं मिला?"

"क्या बताऊँ, एक बच्चा है भी तो वह यतीम है!"

हलीमा ने ठन्डा साँस लेते हुए जवाब दिया। "ज़्यादा इनाम मिलने की उम्मीद नहीं।"

"ख़ाली हाथ जाने से तो अच्छा ही है", हारिस ने कहा। "हो सकता है

वह हमारे लिए भलाई का सबब बन जाए।"

यह सुनकर हलीमा गईं और प्यारे नबी (सल्ल॰) को गोद में ले आईं।

क़िस्मत जाग उठी

हलीमा सादिया कहती हैं कि जब वे वापस हुईं तो वही कमज़ोर ऊँट अब इतना तेज़ चल रहा था कि क़ाफ़िले का कोई दूसरा ऊँट उससे आगे नहीं निकल पाता था। उस यतीम को गोद में लेते ही हलीमा ने महसूस किया कि जैसे उनका दिल खुशी से भर गया हो। हारिस और उनके बच्चों के दिलों में भी उस यतीम बच्चे की मुहब्बत खुद-ब-खुद पैदा हो गई। उनकी बकरियाँ पहले से कहीं ज़्यादा मोटी ताज़ी हो गईं और इतना ज़्यादा दूध देने लगी कि ख़त्म होने को ही नहीं आता था। उनकी खुशहाली पर क़बीलेवाले रश्क करने लगे।

जब पूरे दो साल गुज़र गए तो दाई हलीमा प्यारे नबी (सल्ल॰) को लेकर मक्का आईं। आमिना अपने यतीम बच्चे को सेहतमन्द और तन्दुरुस्त देखकर बहुत खुश हुईं, लेकिन उस वक़्त मक्का में छूत की बीमारी फैली हुई थी, इसलिए आमिना ने हुज़ूर (सल्ल॰) को दाई हलीमा के साथ वापस कर दिया। दाई हलीमा को जैसे मुँह माँगी मुराद मिल गयी हो— वे प्यारे नबी (सल्ल॰) को लिए खुश-खुश घर वापस आ गईं। उनका घर-भर यही चाहता था कि यह बच्चा उनसे कभी जुदा न हो।

सोच-विचार

दाई हलीमा के लड़के अपनी भेड़ और बकरियों को लेकर सुबह-ही-सुबह निकल जाते और सारा दिन पहाड़ों और मैदानों में उनको चराते रहते थे और शाम को घर वापस आते थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) जब कुछ और बड़े हो गए तो आप (सल्ल॰) भी उनके साथ जाने लगे। आप सिर्फ़ बकरियों ही की निगरानी नहीं करते थे, बल्कि क़ुदरत की एक-एक चीज़ बड़े ग़ौर से देखते थे। फिर उसके बारे में कभी अपने भाइयों और कभी दाई हलीमा से तरह-तरह के सवाल किया करते। आप (सल्ल॰) ऐसी-ऐसी बातें पूछते थे कि वे लोग दंग रह जाते थे। आप (सल्ल॰) की अक़्लमन्दी की ये बातें सुनकर

दाई हलीमा बहुत खुश होती थीं।

अजीब वाक़िया

एक दिन अजीब वाक़िया पेश आया। सब लड़के बकरियाँ चरा रहे थे। दो आदमी सफ़ेद कपड़े पहने हुए आए। उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल॰) का कुर्ता उतारकर उनका सीना चाक किया। लड़कों ने जो यह देखा तो वे भागे और जाकर दाई हलीमा से सारा क़िस्सा कह सुनाया। हलीमा सुनकर घबरा उठीं। वे बौखलाकर भागीं, लेकिन प्यारे नबी (सल्ल॰) रास्ते में ही आते हुए मिल गए। उन्होंने लपककर नबी (सल्ल॰) को कलेज़े से लगा लिया और बोलीं, "मेरे लाल! वह कौन था जो तुम्हें मार डालना चाहता था?"

"कुछ लोग थे, उन्होंने मेरा सीना चाक किया और फिर बन्द कर दिया।" नबी (सल्ल॰) ने इत्मीनान के साथ जवाब दिया।

"कहाँ बेटे?" हलीमा ने नबी (सल्ल॰) का सीना टटोलते हुए हैरत के साथ पूछा।

"मुझे तो कोई तकलीफ़ नहीं हुई।" प्यारे नबी (सल्ल॰) इतना कहकर चुप हो गए।

हलीमा नबी (सल्ल॰) को लिए हुए घर आ गईं। हारिस से सारा वाक़िआ बयान करके कहने लगीं, "ऐसा न हो कि मुहम्मद की हिफ़ाज़त न कर सकें और उसे कोई नुक़सान पहुँच जाए।"

"मुहम्मद की वजह से हमको जो बरकतें हासिल हुई हैं, उनको देखकर दिल तो नहीं चाहता कि उनको वापस किया जाए।" हारिस कुछ सोचते हुए कहते रहे। "लेकिन तुम्हारा डर भी सही है। ऐसा न हो कि कुछ हो जाए और फिर हम मुँह दिखाने के लायक़ भी न रहें।"

"इसी बात का तो मुझे डर है। मुनासिब यही है कि मुहम्मद को उसके घर पहुँचा दिया जाए। उसकी माँ ने उसे बुलाया भी है।" हलीमा ने बात पूरी कर दी।

अम्मी और दादा चल बसे

जब नबी (सल्ल॰) पूरे छः साल के हो गए तो अपनी अम्मी जान के साथ अपने ननिहाल मदीना तशरीफ़ ले गए। वहाँ से वापस होते हुए रास्ते ही में 'अबवा' नामक जगह पर आमिना का इन्तिक़ाल हो गया। नबी (सल्ल॰) अपने वालिद की लौन्डी उम्मे-ऐमन के साथ मक्का वापस आए, और अब नबी (सल्ल॰) के दादा अब्दुल-मुत्तलिब उनकी देख-भाल करने लगे। क़िस्मत की बात, माँ के इन्तिक़ाल को अभी दो साल ही गुज़रे थे कि दादा जान भी चल बसे। अब नबी (सल्ल॰) अपने सगे चचा अबू-तालिब की निगरानी में परवरिश पाने लगे। चचा जान नबी (सल्ल॰) को अपनी औलाद से भी ज़्यादा चाहते थे। चचा अबू-तालिब प्यारे नबी (सल्ल॰) को अपने से एक मिनट के लिए भी जुदा नहीं होने देते थे। हर वक़्त अपने ही साथ रखते थे। साथ ही खाना खिलाते और अपने पास ही सुलाते थे।

शर्म से बेहोश हो गए

प्यारे नबी (सल्ल॰) बचपन ही से बहुत शरमीले थे। होश संभालने के बाद से नबी (सल्ल॰) को किसी ने कभी बेपर्दा नहीं देखा था। एक बार काबा की एक दीवार की मरम्मत हो रही थी। बड़े-बूढ़े और बच्चे, सब काम में लगे हुए थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) भी बच्चों के साथ पत्थर उठा-उठाकर ला रहे थे। उस वक़्त नबी (सल्ल॰) की उम्र सिर्फ़ दस साल की थी। पत्थर ढोते-ढोते जब कान्धे छिलने लगे तो सब लड़कों ने अपने-अपने तहबन्द खोलकर कान्धों पर रख लिए, लेकिन नबी (सल्ल॰) ने ऐसा न किया। चचा जान के बहुत कहने सुनने पर नबी (सल्ल॰) तहबन्द खोलना चाहते ही थे कि मारे शर्म के बेहोश होकर गिर पड़े। चचा ने दौड़कर उठा लिया और फिर तहबन्द उतारने के लिए कभी नहीं कहा।

बेकार बातों से नफ़रत

मक्का में चलन था कि रात के वक़्त क़िस्से-कहानियों और नाच-गानों की महफ़िलें जमा करती थीं। लोग बड़े चाव से उनमें शरीक होते। प्यारे नबी

(सल्ल॰) के साथी उनसे भी उन महफ़िलों में शरीक होने के लिए बराबर कहा करते थे, लेकिन नबी (सल्ल॰) टाल दिया करते थे। एक बार जब उन्होंने मजबूर कर दिया तो नबी (सल्ल॰) उनके साथ हो लिए। रास्ते में नबी (सल्ल॰) की फूफी का मकान था। वे नबी (सल्ल॰) से बहुत मुहब्बत करती थीं। उन्होंने जो आपको देखा तो बुला लिया। बातें करने लगीं। बातों-बातों में नबी (सल्ल॰) वहीं लेटकर सो गए। इस तरह इस महफ़िल में जाने से वे बच गए।

एक बार फिर जब नबी (सल्ल॰) के साथियों ने बहुत ज़िद की तो नबी (सल्ल॰) मजबूरन चले तो गए, लेकिन नबी (सल्ल॰) को इतनी ज़ोर से नींद मालूम हुई कि वहीं लेटकर सो गए। नबी (सल्ल॰) को पता भी न चला कि क्या हुआ।

इस तरह अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल॰) को बचपन ही से बेकार कामों से बचाए रखा।

सीरिया का सफ़र

चचा अबू-तालिब कारोबार के लिए सीरिया देश जानेवाले थे। सफ़र लम्बा और तकलीफ़देह था, लेकिन प्यारे नबी (सल्ल॰) ज़िद करके चचा के साथ हो लिए। उस वक़्त नबी (सल्ल॰) की उम्र सिर्फ़ बारह साल थी।

जब यह कारोबारी क़ाफ़िला बसरा पहुँचा तो वहाँ ईसाइयों की एक पुरानी इबादतगाह में एक पेड़ के साये तले ठहर गया। उस गिरजे का पादरी बहीरा प्यारे नबी (सल्ल॰) के मुबारक चेहरे को बड़े ध्यान से देख रहा था और जब क़ाफ़िला उस पेड़ के नीचे ठहरा तो वह चौंक पड़ा और बड़बड़ाने लगा, "इस पेड़ के नीचे तो किसी नबी का क़ाफ़िला ही ठहर सकता है।"

उस रात उसने पूरे क़ाफ़िले की दावत कर दी। खाने के बाद बुहैरा ने अबू-तालिब को अपने पास बुलाया और पूछा–

"यह लड़का आपका कौन है?"

"यह मेरा बेटा है।" अबू-तालिब ने जवाब दिया।

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।" बुहैरा ने इनकार से सिर हिलाते हुए

कहा। "इसके बाप का तो इन्तिक़ाल हो जाना चाहिए था।"

"आप ठीक कहते हैं।" अबू-तालिब ने हैरत के साथ जवाब दिया। "यह मेरा भतीजा है। इसकी पैदाइश से पहले ही इसके बाप का इन्तिक़ाल हो चुका है। मैंने इसे अपने बेटे की तरह पाला है।"

"सच कहते हैं आप।" बुहैरा ने कुछ सोचते हुए कहा। इसके बाद उसने प्यारे नबी (सल्ल॰) से ख़ाबों और फ़रिश्तों के बारे में बहुत-से सवाल किए। नबी (सल्ल॰) के जवाबों से उसे और ज़्यादा इत्मीनान हो गया और बोला—

"खुश-ख़बरी हो आपको कि आप नबियों के सरदार बननेवाले हैं। काश मैं उस समय तक ज़िन्दा रह सकूँ!"

फिर वह अबू-तालिब से बोला—

"आप अपने भतीजे की ख़ास तौर पर निगरानी रखें। यह अल्लाह के आख़िरी नबी होनेवाले हैं। ऐसा न हो कि यहूदी इनको कोई नुक़सान पहुँचा दें।"

अबू-तालिब बुहैरा की बातों से कुछ ऐसे डरे कि अपना सारा कारोबारी सामान जल्दी-जल्दी बेच दिया और भतीजे को लिए हुए मक्का वापस आ गए।

समाज की बुराइयों से दुखी

प्यारे नबी (सल्ल॰) अब जवान हो गए थे। अरब के रिवाज के मुताबिक़ कारोबार ही को नबी (सल्ल॰) ने अपनी गुज़र-बसर का ज़रिआ बनाया। नबी (सल्ल॰) जहाँ कहीं जाते वहाँ के लोगों के रहन-सहन और रंग-ढंग को बड़े ध्यान से देखते। उनकी बुराइयों को देखकर नबी (सल्ल॰) बहुत दुखी होते और उनके बारे में बराबर सोचते रहते। ख़ास तौर पर अब्दुल-मुत्तलिब के इन्तिक़ाल के बाद मक्कावालों के रहन-सहन में बहुत-सी बुराइयाँ पैदा हो गई थीं, क्योंकि उनको बुराई और ज़ुल्म व ज़्यादती से रोकनेवाला अब कोई नहीं रहा था। नाइनसाफ़ी बढ़ती जा रही थी। मुसाफ़िरों को दिन-दहाड़े लूट लिया जाता था, और फिर उनकी मदद करनेवाला कोई नज़र नहीं आता था। समाज की इन गन्दगियों को देखकर नबी (सल्ल॰) दिल-ही-दिल में कुढ़ते

रहते और उन्हें दूर करने के तरीक़ों पर बराबर ग़ौर करते रहते।

हिलफ़ुल-फ़ुज़ूल

मक्कावालों की इस गिरी हुई हालत को देखकर बनी-हाशिम ख़ानदान के कुछ लोगों के दिल में उनके सुधार का ख़याल पैदा हुआ। उनमें प्यारे नबी (सल्ल०) भी शरीक थे। सब सिर जोड़कर बैठे और इन बातों का अहद किया–

(1) हममें से हर एक मज़लूम का साथ देगा।

(2) कोई ज़ालिम मक्का में न रहने पाएगा।

(3) अगर मक्का में किसी को लूटा जाएगा तो उसके नुक़सान को हर सूरत में पूरा करने की कोशिश की जाएगी।

(4) हम देश से बद-अमनी को दूर करेंगे।

यह फ़ैसला प्यारे नबी (सल्ल०) की कोशिशों से हुआ था। इसका नाम 'हिलफ़ुल-फ़ुज़ूल' था।

तलवारें निकल आईं

पैग़म्बर इबराहीम (अलैहि०) की बनाई हुई हज़ार साल पुरानी काबा की दीवारें बहुत कमज़ोर हो गई थीं। मक्कावालों ने काबा की दीवारों को फिर से बनाने का इरादा कर लिया था। छोटे और बड़े हर क़बीले के लोग उसमें लग गए। जब दीवारें कुछ ऊँची हो गईं तो अब 'हजरे-असवद' (काला पत्थर) लगाने का मसला पैदा हो गया। हर क़बीले का सरदार यह इज़्ज़त हासिल करना चाहता था। आपस में तू-तू, मैं-मैं होने लगी, और फिर बात इतनी बढ़ी कि तलवारें तक निकल आईं। चार रोज़ तक यही तमाशा होता रहा, पाँचवें दिन एक बुज़ुर्ग क़ुरैशी ने सबसे कहा–

"मेरी सुनो– अगर बात मुनासिब हो तो मान लेना–इस लड़ाई-झगड़े में क्या रखा है!"

"कहिए चचाजान– कहिए–" सब बोल उठे।

"कल सुबह काबा में जो आदमी सबसे पहले दाख़िल हो, उसके सिपुर्द यह मामला कर दो। जो फ़ैसला वह करे, सब उसे मान लें।" बुज़ुर्ग क़ुरैशी

ने अपनी राय पेश कर दी।

"बहुत ठीक, बहुत ठीक।" हर तरफ़ से आवाज़ें बुलन्द हुईं और निकली हुई तलवारें म्यानों में चली गईं।

सब ख़ुश हो गए

दूसरे दिन सुबह तड़के बहुत-से लोगों ने काबा में सबसे पहले पहुँचने की कोशिश की। लेकिन उनको यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि वहाँ पहले ही से कोई मौजूद था। सबने उसे ध्यान से देखा और एक साथ चीख़ उठे—

"अरे, यह तो मुहम्मद हैं!"

मुहम्मद (सल्ल॰) के सामने मामला पेश किया गया। वे ग़ौर से सुनते रहे फिर फ़रमाया—

"अच्छा, एक चादर यहाँ बिछा दो।"

कहने की देर थी कि एक चादर बिछा दी गई। प्यारे नबी (सल्ल॰) उठे और 'हजरे-असवद' को अपने मुबारक हाथों से उस चादर में रख दिया और फ़रमाया—

"हर क़बीले का सरदार इस चादर के पास आ जाए।"

सब आगे बढ़कर उस चादर के पास खड़े हो गए। फिर नबी (सल्ल॰) के हुक्म के मुताबिक़ सबने उस चादर को पकड़कर उठाया और उस जगह 'हजरे-असवद' को पहुँचा दिया, जहाँ उसे लगना था। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फिर ख़ुद उसे उठाकर उस जगह पर चुन दिया। सबकी बात रह गई और सब ख़ुश हो गए।

देखा तुमने किस अक़्लमन्दी से प्यारे नबी (सल्ल॰) ने सबको ख़ून-ख़राबे से बचा लिया! दुरूद हो प्यारे नबी पर! सलाम हो प्यारे नबी पर!

सच्चे और अमानतदार

मुहम्मद नबी (सल्ल॰) की सच्चाई और अमानतदारी की चर्चाएँ दूर-दूर तक होने लगी थीं। मामलों और कारोबार में आप (सल्ल॰) जिस सफ़ाई और सुथराई का नमूना पेश कर रहे थे, उससे मक्कावाले बहुत मुतास्सिर थे।

हुज़ूर (सल्ल॰) दौलतमन्द तो थे नहीं, इसलिए कारोबार में वे दूसरों को

अपने साथ शरीक कर लिया करते थे। उनके साथ नबी (सल्ल.) का मामला बहुत खरा होता था। बेईमानी का तो नाम ही न था। धोखा देना नबी (सल्ल॰) जानते ही न थे। झूट नबी (सल्ल॰) कभी बोलते ही न थे। हिसाब-किताब बिलकुल साफ़ रखते थे। सफ़र से वापस आने के बाद एक-एक पैसे का हिसाब कर दिया करते थे, यही वजह थी कि नबी (सल्ल॰) 'सादिक़' (सच्चे) और 'अमीन' (अमानतदार) के नाम से मशहूर हो गए। हर व्यक्ति नबी (सल्ल॰) के साथ कारोबार में शरीक होना चाहता था।

वादा पूरा करना

मुहम्मद (सल्ल॰) वादे के बहुत सच्चे थे। जो वादा करते, उसे हर हालत में पूरा करते। अब्दुल्लाह-बिन-आबिल-हम्सा कारोबार में नबी (सल्ल॰) के शरीक थे। एक बार उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल॰) से लेन-देन का कोई मामला किया। रास्ते में ही उन्हें एक ज़रूरी काम याद आ गया। उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल॰) से कहा–

"ज़रा ठहरिए, मैं अभी आता हूँ।"

यह कहकर वे चले गए और काम में फँसकर वादा भूल गए। तीसरे दिन जब उन्हें याद आया तो दौड़े हुए उसी जगह पहुँचे। देखा हुज़ूर (सल्ल॰) वहीं मौजूद थे। उन्हें बड़ी शर्म महसूस हुई, लेकिन प्यारे नबी (सल्ल॰) की पेशानी पर बल तक न आया। हाँ, आप (सल्ल॰) ने सिर्फ़ इतना कहा–

"अब्दुल्लाह! तुमने मुझे बड़ी तकलीफ़ दी। मैं तीन दिन से इसी जगह मौजूद हूँ।"

सच्चाई

प्यारे नबी (सल्ल॰) ख़रीदारों के साथ भी मामला बहुत साफ़ रखते थे। माल में अगर कोई ख़राबी होती तो नबी (सल्ल॰) उसे छिपाते न थे, बल्कि ख़रीदार को बता दिया करते थे।

एक बार एक आदमी के हाथ नबी (सल्ल॰) ने कुछ ऊँट बेचे। वह आदमी जब ऊँट लेकर चला गया तो नबी (सल्ल॰) को याद आया कि उनमें से एक ऊँट लंगड़ा था। नबी (सल्ल॰) बेचैन हो गए। फ़ौरन ख़रीदार के पीछे

लपके। उसके पास पहुँचकर नबी (सल्ल॰) ने उस लंगड़े ऊँट की क़ीमत उसको वापस कर दी और ऊँट को ले आए।

हराम से बचना

प्यारे नबी (सल्ल॰) की परवरिश ऐसे माहौल में हुई थी, जहाँ हर तरफ़ मुशरिकाना रस्म व रिवाज आम थे, लेकिन नबी (सल्ल॰) हमेशा इन बातों से दूर ही रहते थे। क़ुदरती तौर पर नबी (सल्ल॰) को इन बातों से बड़ी नफ़रत थी।

एक बार नबी (सल्ल॰) के सामने कुछ खाना लाकर रखा गया। जब नबी (सल्ल॰) को मालूम हुआ कि यह खाना बुतों के चढ़ावे का है और गोश्त तो उस जानवर का है, जो किसी बुत के नाम पर ज़िब्ह किया गया था तो नबी (सल्ल॰) ने हाथ रोक लिया और बुतों का चढ़ावा खाने से इनकार कर दिया, हालाँकि नबी (सल्ल॰) गोश्त बहुत पसन्द करते थे, लेकिन उस जानवर का गोश्त नबी (सल्ल॰) कैसे खा सकते थे जो अल्लाह के सिवा किसी और के नाम पर ज़िब्ह किया गया हो! वह तो हराम हो गया था!

प्यारे नबी (सल्ल॰) के दोस्त

प्यारे नबी (सल्ल॰) के दोस्त बहुत ही नेक, शरीफ़ और पाकीज़ा अख़लाक़वाले थे। वे सब मक्का में इज़्ज़त की नज़र से देखे जाते थे।

(1) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰)

उनका असली नाम अब्दुल्लाह था। उनसे प्यारे नबी (सल्ल॰) की गहरी दोस्ती थी। वे उम्र में नबी (सल्ल॰) से कुछ साल छोटे थे। मक्का में उनको बड़ी इज़्ज़त हासिल थी। वे साए की तरह हुज़ूर (सल्ल॰) के साथ रहते थे। कारोबार में भी नबी (सल्ल॰) के साथ शरीक रहे और आख़िर दम तक नबी (सल्ल॰) का साथ नहीं छोड़ा।

(2) हज़रत हकीम-बिन-हिज़ाम (रज़ि॰)

वे ख़दीजा (रज़ि॰) के चचेरे भाई थे। उम्र में हुज़ूर (सल्ल॰) से पाँच साल बड़े थे। उनका शुमार क़ुरैश के रईसों में होता था। प्यारे नबी (सल्ल॰) को

उनसे बड़ी मुहब्बत थी। हिजरत के आठवें साल मुसलमान हुए।

(3) हज़रत ज़िमाद-बिन-सालबा (रज़ि॰)

उन्हें भी प्यारे नबी (सल्ल॰) से बड़ी मुहब्बत थी। वे अपने ज़माने के अच्छे हकीम और जर्राह (सर्जन) थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) के रसूल होने के बाद एक बार ये मक्का आए। देखा कि हुज़ूर (सल्ल॰) रास्ते में चले जा रहे थे और पीछे लड़कों का गरोह था। मक्कावाले नबी (सल्ल॰) को दीवाना और मजनून कह रहे थे। यह हालत देखकर उनको बड़ा तरस आया। वे समझे कि ख़ुदा न ख़ास्ता हुज़ूर (सल्ल॰) सचमुच दीवाने हो गए हैं। वे नबी (सल्ल॰) के पास आए और बोले, "मुहम्मद, मैं जुनून का बहुत अच्छा इलाज कर लेता हूँ।" हुज़ूर (सल्ल॰) ने निगाह उठाकर मुस्कुराते हुए उनको देखा। फिर अल्लाह की तारीफ़ करके क़ुरआन मजीद की कुछ आयतें पढ़ीं। हज़रत ज़िमाद (रज़ि॰) सब कुछ भूल गए और उसी वक़्त मुसलमान हो गए।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰)

हज़रत ख़दीजा मक्का की बहुत ही मालदार और इज़्ज़तवाली औरत थीं। वे बेवा थीं। उनके दो शोहरों का इन्तिक़ाल हो चुका था। दूर के रिश्ते से प्यारे नबी (सल्ल॰) की चचेरी बहन होती थीं। हज़रत ख़दीजा अपनी शराफ़त, पाकदामनी और ख़ुश-अख़लाक़ी की वजह से 'ताहिरा' (पाकदामन) के नाम से मशहूर थीं।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के यहाँ भी कारोबार होता था। वे अपना माल दूसरों के ज़रिए से बेचती थीं। उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल॰) की सच्चाई, ईमानदारी और अमानतदारी की चर्चाएँ सुनीं तो नबी (सल्ल॰) के पास पैग़ाम भेजा कि "अगर आप मेरा माल लेकर कारोबार के लिए जाएँ तो आपको दूसरों के मुक़ाबले में दो गुना मुनाफ़ा दूँगी।" प्यारे नबी (सल्ल॰) तैयार हो गए और उनका माल लेकर सफ़र पर चल पड़े। नबी (सल्ल॰) के साथ हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) का एक नौकर 'मैसरा' भी था।

अल्लाह की मेहरबानी, इस बार मुनाफ़ा बहुत हुआ और फिर मैसरा ने हुज़ूर (सल्ल॰) की तारीफ़ों के तो पुल बाँध दिए। कहने लगा—

"मैंने मुहम्मद जैसा, सच्चा, अमानतदार और नेक आदमी देखा ही नहीं। ग्राहकों के साथ बहुत नरमी से पेश आते थे। बातें बनाना या धोखा देना तो जानते ही नहीं। मैं इतने दिनों उनके साथ रहा, उन्होंने कभी मुझे एक बात भी नहीं कही। सच कहता हूँ वे इनसान नहीं फ़रिश्ता हैं, फ़रिश्ता!"

हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) मैसरा की बातें बड़े ग़ौर से सुनती रहीं और कुछ सोचती रहीं।

शादी

कुछ दिनों के बाद हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) ने शादी का पैग़ाम प्यारे नबी (सल्ल॰) को भेज दिया। नबी (सल्ल॰) ने चचा अबू-तालिब से मश्वरा किया। चचा जान भला ऐसी शरीफ़ और नेक औरत से शादी करने को कब मना कर सकते थे! बहरहाल प्यारे नबी (सल्ल॰) और हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) की शादी हो गई। उस वक़्त हुज़ूर (सल्ल॰) की उम्र पचीस साल और हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) की उम्र चालीस साल थी।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) बड़ी अच्छी औरत थीं। वे प्यारे नबी (सल्ल॰) के आराम का पूरा ख़याल रखती थीं। नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत दिल-जान से खुद करती थीं। उन्होंने अपनी सारी दौलत नबी (सल्ल॰) के क़दमों में डाल दी कि वे जिस तरह चाहें इसे ख़र्च करें।

चचा जान की मदद

चचा अबू-तालिब का ख़ानदान बड़ा था और आमदनी कम। बड़ी तंगी से गुज़र-बसर होती थी। प्यारे नबी (सल्ल॰) चचा जान की यह परेशानी भला कैसे देख सकते थे! एक दिन नबी (सल्ल॰) अपने दूसरे चचा हज़रत अब्बास (रज़ि॰) के पास गए, जो खुदा के फ़ज़्ल से खुशहाल थे, जाकर फ़रमाया–

"चचा जान! आप देख रहे हैं कि चचा अबू-तालिब आजकल बहुत तंगी और परेशानी से गुज़र-बसर कर रहे हैं।"

"हाँ भतीजे! मुझे भी इस बात का एहसास है।" हज़रत अब्बास ने जवाब दिया।

"क्यों न हम और आप दोनों मिलकर चचा जान की मदद करें।" प्यारे

नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अब्बास से कहा।

"मैं तैयार हूँ।" हज़रत अब्बास बोल उठे। "कहो, किस तरह उनकी मदद की जा सकती है?"

"उनके एक लड़के को मैं ले लेता हूँ और एक को आप ले लें।" प्यारे नबी (सल्ल॰) ने राय दी। "इस तरह कुछ-न-कुछ बोझ हल्का हो जाएगा।"

हज़रत अब्बास ने हज़रत जाफ़र को ले लिया और प्यारे नबी ने हज़रत अली को। उस दिन से हज़रत अली (रज़ि॰) प्यारे नबी (सल्ल॰) के साथ रहने लगे।

मुँहबोले बेटे

उस ज़माने में यह चलन था कि लौंडी और ग़ुलाम भी जानवरों की तरह बाज़ार में बेचे जाते थे। एक बार एक भोला-भाला कोई ग्यारह-बारह साल का लड़का मक्का के बाज़ार में बिकने के लिए आया। हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के भाई ने उसे ख़रीदकर अपनी बहन को दे दिया और हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) ने उसे प्यारे नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में पेश कर दिया। उस लड़के का नाम ज़ैद-बिन-हारिसा था। प्यारे नबी (सल्ल॰) उनको बेटे की तरह से रखने लगे। उनकी हर ज़रूरत का ख़याल रखते। उनको अच्छी-अच्छी बातें सिखाते। ज़ैद (रज़ि॰) भी हुज़ूर (सल्ल॰) के साथ ख़ूब घुल-मिल गए।

उधर ज़ैद (रज़ि॰) के बाप और चचा उनको ढूँढते-ढूँढते मक्का पहुँचे। यहाँ उनको ज़ैद (रज़ि॰) का पता चला तो वे प्यारे नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुए और कहने लगे–

"हम यमन के रहनेवाले हैं। कई साल हुए जब हमारा बेटा अपनी माँ के साथ ननिहाल जा रहा था, रास्ते में डाकुओं ने हमला कर दिया। माल और दौलत के साथ वे इस लड़के को भी ले गए। तब से हम इसको तलाश कर रहे हैं। अब जाकर पता चला है कि शायद वह आपके पास है। आप हमारे हाल पर तरस खाकर जितनी रक़म चाहें हमसे ले लें और उसे हमारे हवाले कर दें। बड़ी मेहरबानी होगी!"

हारिसा की विपदा सुनकर प्यारे नबी (सल्ल॰) ख़ामोश हो गए। नबी

(सल्ल॰) ने ज़ैद (रज़ि॰) को औलाद की तरह पाला था और उनसे बहुत मुहब्बत हो गई थी। आख़िरकार सोचकर फ़रमाया— "क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप ख़ुद ज़ैद से मालूम कर लें, अगर वह तैयार हो तो आप ख़ुशी से ले जाएँ। मैं उसका कोई मुआवज़ा नहीं लूँगा, लेकिन अगर वह मेरे पास रहना चाहे तो यह कैसे हो सकता है कि मैं उसे निकाल दूँ!"

"यह तो नबी (सल्ल॰) ने इनसाफ़ से भी बढ़कर बात कह दी।" दोनों भाई एक ज़बान होकर बोल उठे।

दोनों ख़ुश-ख़ुश वापस गए

ज़ैद (रज़ि॰) बुलाए गए। उनके बाप ख़ुश थे कि अब पाला मार लिया। वह भला माँ-बाप को छोड़कर यहाँ रहना क्यों पसन्द करने लगे। बहरहाल ज़ैद (रज़ि॰) आए तो हुज़ूर (सल्ल॰) उनसे बोले—

"इनको पहचानते हो, ये कौन हैं?"

"जी हाँ, एक मेरे बाप हैं, दूसरे चचा" ज़ैद (रज़ि॰) के चेहरे पर ख़ुशी छायी हुई थी।

"जानते हो, ये तुम्हें लेने के लिए आएं हैं!" हुज़ूर (सल्ल॰) ने फ़रमाया।

"मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जा सकता।" ज़ैद (रज़ि॰) के चेहरे से ख़ुशी जाती रही।

हारिसा और उनके भाई यह जवाब सुनकर हक्का-बक्का रह गए। आख़िरकार हारिसा ज़ैद (रज़ि॰) से बोले—

"बेटे! तुम माँ-बाप को छोड़कर यहाँ रहना पसन्द कर रहे हो, जबकि माँ तुम्हारे लिए बेताब है।"

"जी हाँ! मैंने मुहम्मद (सल्ल॰) जैसा रहमदिल, हमदर्द और मुहब्बत करनेवाला इनसान नहीं देखा। इनके पास रहकर मुझे आप लोगों की कमी महसूस नहीं होती।" ज़ैद (रज़ि॰) ने फ़ौरन जवाब दिया।

"आज़ादी के बदले ग़ुलामी क़बूल कर रहे हो।" चचा ने ज़रा तेज़ आवाज़ में कहा।

"मैं ग़ुलाम नहीं, आज़ाद हूँ।" ज़ैद (रज़ि॰) फ़ौरन बोल उठे, "ये मुझे

अपनी औलाद की तरह रखते हैं। जो खुद खाते, वह मुझे खिलाते हैं। जो खुद पहनते हैं, वह मुझे पहनाते हैं। कामों में मेरी मदद करते हैं। आप मेरे साथ इससे ज़्यादा क्या करते!"

ज़ैद (रज़ि॰) का जवाब सुनकर उनके बाप और चचा दोनों ख़ामोश हो गए, लेकिन प्यारे नबी (सल्ल॰) का चेहरा खुशी से दमक उठा। नबी (सल्ल॰) ने ज़ैद (रज़ि॰) का हाथ पकड़ा और काबा की तरफ़ रवाना हो गए। ज़ैद (रज़ि॰) के बाप और चचा भी साथ हो लिए। नबी (सल्ल॰) जब काबा में पहुँचे तो वहाँ बहुत-से लोग मौजूद थे। ज़ैद (रज़ि॰) का हाथ ऊपर उठाते हुए नबी (सल्ल॰) ने लोगों से कहा—

"आज से यह ज़ैद मेरा बेटा है, और मेरा वारिस है।" यह एलान सुनकर ज़ैद (रज़ि॰) के बाप खुश हो गए और बोले—

"अब मुझे इत्मीनान है कि मेरा बेटा मुझसे कहीं ज़्यादा अच्छे शख़्स की सरपरस्ती में है।"

यह कहकर दोनों भाई खुश-खुश वापस चले गए।

ग़ारे-हिरा

मक्कावालों की अख़लाक़ी हालत बराबर ख़राब होती जा रही थी। कमज़ोरों को सताना, मुसाफ़िरों को लूट लेना और बात-बात पर ख़ून बहाने के लिए तैयार हो जाना उनके लिए मामूली बात थी। झूट, धोखा, शराब, जुआ और सूद की बुराई आम थी। इसी तरह लड़कियों को ज़िन्दा दफ़न कर देने का चलन भी आम था। उनकी यह बुरी हालत देखकर प्यारे नबी (सल्ल॰) को बहुत दुख होता था। कुछ समझ में न आता कि उनको किस तरह सुधारा जाए।

मक्का से कोई तीन मील की दूरी पर एक पहाड़ है, जिसका नाम हिरा है। नबी (सल्ल॰) खाने-पीने का सामान लेकर अकसर उस पहाड़ की एक गुफ़ा में जाकर बैठ जाते। उसी का नाम 'ग़ारे-हिरा' (हिरा की गुफ़ा) है। वहाँ नबी (सल्ल॰) मक्कावालों के सुधार के बारे में ग़ौर किया करते। इसी सोच-विचार में कई-कई घन्टे और कभी कई-कई दिन गुज़र जाते।

मुहम्मद (सल्ल॰) नबी हो गए

रबीउल-अव्वल का महीना था। प्यारे नबी (सल्ल॰) हिरा की गुफा में बैठे सोच-विचार कर रहे थे। अचानक एक फ़रिश्ता उनके सामने आ गया। फ़रिश्ते को देखकर नबी (सल्ल॰) घबरा गए। ये अल्लाह के अमानतदार फ़रिश्ते हज़रत जिबरील (अलैहि॰) थे, जो पिछले नबियों के पास भी अल्लाह का पैग़ाम लाया करते थे। फ़रिश्ते ने प्यारे नबी (सल्ल॰) से कहा, 'पढ़ो।'

"मैं पढ़ना-लिखना नहीं जानता।" प्यारे नबी (सल्ल॰) ने साफ़ और सच्ची बात बता दी।

फ़रिश्ते ने नबी (सल्ल॰) को अपने सीने से लगाकर इतनी ज़ोर से भींचा कि नबी (सल्ल॰) की साँस रुकने लगी। फिर फ़रिश्ते ने नबी (सल्ल॰) को छोड़ दिया और कहा, "पढ़ो।" प्यारे नबी (सल्ल॰) ने वही जवाब दिया। फ़रिश्ते ने फिर पकड़कर भींचा और कहा—

> "पढ़ो, अपने रब के नाम से, जिसने पैदा किया (कायनात को)। उसने पैदा किया इनसान को जमे हुए ख़ून से। पढ़ो! तेरा रब बड़ा करीम है जिसने इल्म सिखाया क़लम के ज़रिए। सिखाया इनसान को जो कुछ वह नहीं जानता था।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-68 क़लम, आयत-1 से 5)

इसके बाद जिबरील (अलैहि॰) ने नबी (सल्ल॰) को यह ख़ुशख़बरी भी सुनाई कि अल्लाह ने अपना दीन फैलाने के लिए आपको अपना नबी बनाया है। यह कहकर हज़रत जिबरील (अलैहि॰) चले गए। प्यारे नबी (सल्ल॰) इतने घबराए और डरे कि थर-थर काँपने लगे। आख़िरकार नबी (सल्ल॰) हिरा की गुफा से निकलकर सीधे घर पहुँचे। घर आकर लेट गए और हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) से फ़रमाया, "मुझे कम्बल उढ़ा दो।"

हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) ने कम्बल उढ़ा दिया और हाल पूछा। नबी (सल्ल॰) ने 'ग़ारे-हिरा' का सारा क़िस्सा कह सुनाया। हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) को इस तरह तसल्ली देने लगीं—

"आप घबराएँ नहीं, अल्लाह ने जब आपको अपना नबी

> बनाया है तो वह आपको हलाक़ नहीं होने देगा। आप रिश्तेदारों और पड़ोसियों का हक़ अदा करते हैं। यतीमों और ग़रीबों की मदद करते हैं, फिर डर किस बात का है!"

तसल्ली देने के बाद हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) को अपने चचेरे भाई वरक़ा-बिन-नौफ़ल के पास ले गईं। वे आलिम और बुज़ुर्ग आदमी थे। उनसे सारा क़िस्सा कह सुनाया।

उन्होंने सब कुछ सुनने के बाद नबी (सल्ल॰) को इत्मीनान दिलाते हुए जवाब दिया—

> "घबराइए नहीं! यह फ़रिश्ता तो वही है जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) के पास आया करता था। आप बेशक आख़िरी नबी हैं।"

उस वक़्त नबी (सल्ल॰) की उम्र चालीस साल की थी।

सबसे पहले मुसलमान

औरतों में सबसे पहले हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) मुसलमान हुईं।

मर्दों में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) सबसे पहले ईमान लाए।

लड़कों में नबी (सल्ल॰) के चचेरे भाई हज़रत अली (रज़ि॰) ने सबसे पहले इस्लाम क़बूल किया।

ग़ुलामों में सबसे पहले हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा मुसलमान हुए, जिनको प्यारे नबी (सल्ल॰) ने आज़ाद करके अपना बेटा बना लिया था।

पहाड़ी का पैग़ाम

प्यारे नबी (सल्ल॰) तीन साल तक अल्लाह का दीन मक्कावालों को छिप-छिपकर पहुँचाते रहे। उनको अच्छी-अच्छी बातें बताते रहे। बुरी बातों से उनको मना करते रहे। आख़िरकार एक दिन अल्लाह का हुक्म आया कि जो पैग़ाम तुमको मिला है, वह खुलकर सबको पहुँचाओ और अपने ख़ानदानवालों को भी अल्लाह के अज़ाब से डराओ।

यह हुक्म मिलते ही एक दिन प्यारे नबी (सल्ल॰) सफ़ा की पहाड़ी पर गए और वहाँ से पूरे ज़ोर के साथ क़ुरैश के लोगों को पुकारा। पुकार सुनते

ही लोग जमा होना शुरू हो गए। जब सब आ गए तो नबी (सल्ल॰) ने उनसे कहा, "ऐ लोगो! अगर मैं तुमसे कहूँ कि इस पहाड़ी के पीछे एक लश्कर छिपा हुआ है, जो तुमपर हमला करना चाहता है, तो क्या तुम यक़ीन करोगे?"

"बेशक, बेशक!" हर तरफ़ से आवाज़ें आने लगीं। "क्योंकि आज तक तुमने कभी झूठ नहीं बोला है।"

"तो फिर सुनो।" प्यारे नबी (सल्ल॰) ने कहना शुरू किया। "ऐ लोगो! बुतों की बन्दगी छोड़कर सिर्फ़ एक अल्लाह की बन्दगी करो। अगर तुमने मेरा कहना न माना तो अपने-आपको अल्लाह के अज़ाब से न बचा सकोगे।

नबी (सल्ल॰) का यह कहना था कि सब आप (सल्ल॰) पर नाराज़ होने लगे और बुरा-भला कहते हुए अपने-अपने घरों को चलते बने। ख़ास तौर पर नबी (सल्ल॰) का सगा चचा अबू-लहब चीख़कर बोला–

"ख़ुदा समझे तुम्हें! क्या इसी लिए तुमने हमें पुकारा था!" यह कहकर वह भी एक तरफ़ को रवाना हो गया।

ख़ानदानवालों की दावत

कुछ दिनों के बाद प्यारे नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) से कहा कि "दावत का इन्तिज़ाम करो और अब्दुल-मुत्तलिब के ख़ानदान के तमाम लोगों को दावत दे दो।" जब सब इकट्ठे हो गए तो पहले नबी (सल्ल॰) ने सबको खाना खिलाया और फिर खड़े होकर फ़रमाया, "अल्लाह ने जो चीज़ मेरे ऊपर उतारी है, उसपर अमल करने से दुनिया और आख़िरत दोनों सँवर सकती हैं। अब बताइए इस काम में कौन-कौन मेरा साथ देगा?"

यह सुनते ही सबपर सन्नाटा छा गया। ऐसा मालूम होता था जैसे साँप सूँघ गया हो। हज़रत अली (रज़ि॰) की उम्र उस वक़्त सिर्फ़ तेरह साल की थी। जब उन्होंने देखा कि प्यारे नबी (सल्ल॰) का साथ देने के लिए कोई तैयार नहीं होता, तो उनसे न रहा गया। वे खड़े हो गए और प्यारे नबी (सल्ल॰) से अर्ज़ किया, हालाँकि मैं सबसे छोटा हूँ, दुबला-पतला हूँ, कमज़ोर हूँ, आँखें भी आई हुई हैं, फिर भी मैं आपका साथ दूँगा।"

हज़रत अली (रज़ि॰) की यह बात सुनकर ख़ानदानवाले मुस्करा दिए और यह कहते हुए चल गए–

"और लो......ये दोनों मिलकर दुनिया की हालत सवाँरेंगे।"

दीन की तबलीग़

ख़ानदानवालों के इस रवैये से प्यारे नबी (सल्ल॰) ने हिम्मत नहीं हारी, बल्कि नबी (सल्ल॰) ने दीन फैलाने का काम और तेज़ कर दिया। नबी (सल्ल॰) लोगों से साफ़-साफ़ कहते कि ऐ लोगो! तुम जिन बुतों की पूजा करते हो, ये ख़ुद तुम्हारे अपने हाथों के बनाए हुए हैं। ये न तो बोल सकते हैं, न कुछ सुन सकते हैं। इनपर मक्खियाँ बैठती हैं, उन तक को नहीं उड़ा सकते। इनमें कोई ताक़त नहीं है। फिर सोचो तो, ये तुम्हारी क्या मदद करेंगे? तुम्हारा तो अस्ल मालिक सिर्फ़ अल्लाह है। उसी ने तुम्हें पैदा किया है और वही रोज़ी देता है। उसी के पास सारे इख़्तियार हैं। उसके कहने पर चलोगे तो वह तुमसे ख़ुश होगा, मरने के बाद जन्नत देगा। उसकी नाफ़रमानी करोगे तो उसके अज़ाब से न बच सकोगे। आख़िरत में तुम्हारा ठिकाना जहन्नम होगा।

प्यारे नबी (सल्ल॰) की ये सीधी-सच्ची बातें सुनकर लोग बहुत मुतास्सिर होते थे। मुसलमानों की तादाद बढ़ने लगी। जब यह तादाद चालीस से ज़्यादा हो गई तो एक दिन प्यारे नबी (सल्ल॰) ने काबा में जाकर अल्लाह के दीन का एलान किया। मक्कावालों के नज़दीक यह तो काबा की सबसे बड़ी बेइज़्ज़ती थी। सब नबी (सल्ल॰) पर टूट पड़े, मार-पीट करने लगे। जब यह ख़बर हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के पहले शौहर के बेटे हज़रत हारिस-बिन-अबी-हाला को मिली तो वे दौड़ पड़े। उनको प्यारे नबी (सल्ल॰) बहुत प्यारे थे। वे नबी (सल्ल॰) को बचाने लगे। हर तरफ़ से हज़रत हारिस (रज़ि॰) पर तलवारें पड़ने लगीं और वे बेचारे वहीं शहीद हो गए।

इस्लाम की राह में शहीद होनेवालों में उनका नम्बर पहला था।

मुँह की खानी पड़ी

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने दीन की तबलीग़ खुल्लम-खुल्ला शुरू कर दी थी। जब और जहाँ नबी (सल्ल॰) को मौक़ा मिलता दीन की बातें बताने से नहीं चूकते थे। धीरे-धीरे मुसलमानों की तादाद भी बढ़ रही थी। मक्का के सरदार नबी (सल्ल॰) की इस बात से बहुत परेशान और नाराज़ थे। उनको अपनी चौधराहट ख़तरे में नज़र आ रही थी। एक दिन उन्होंने आपस में मश्वरा किया कि "मुहम्मद अपने चचा अबू-तालिब से बहुत मुहब्बत करते हैं और उनका कहना भी मानते हैं। क्यों न चलकर उनपर ज़ोर डाला जाए कि वे अपने भतीजे को रोकें।" इस राय पर सब एक हो गए और उनके कुछ नुमाइन्दे चचा अबू-तालिब के पास पहुँचे और उनसे कहा—

"आपका भतीजा मुहम्मद अब हद से आगे बढ़ता जा रहा है। वह हमारे खुदाओं और बाप-दादा की बेइज़्ज़ती करता फिरता है, आप उसे समझा दें कि वह यह हरकत छोड़ दे।"

"हमें अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है।"— एक दूसरे सरदार ने कहना शुरू किया, "अगर उसने अपना रवैया न बदला तो अब हमारी तलवारें उसका फ़ैसला करेंगी।"

सरदारों की बातों से अबू-तालिब समझ गए कि अब पानी सिर से ऊँचा हो गया है। उन्होंने कहा—

"ठहरिये, मैं अपने भतीजे को बुलाकर समझाता हूँ।"

उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल॰) को बुलाया और सरदारों की बातें नबी (सल्ल॰) को बताईं। फिर कहने लगे—

"प्यारे भतीजे! ये लोग तुम्हारी बातों से तंग आ चुके हैं और अब लड़ने-मरने पर उतारू हैं। मेरे बुढ़ापे को देखो। मुझे किसी ऐसी मुसीबत में न डालो, जिसे मैं अब बर्दाश्त न कर सकूँ।"

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने चचा की ये बातें सुनीं तो नबी (सल्ल॰) की आँखों में आँसू आ गए। फिर भी नबी (सल्ल॰) ने बड़ी हिम्मत के साथ जवाब दिया—

"चचा जान! अगर ये लोग मेरे एक हाथ में सूरज और दूसरे हाथ में चाँद लाकर रख दें, ख़ुदा की क़सम! तब भी मैं अपने फ़र्ज से नहीं रुकूँगा। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, अल्लाह की मर्ज़ी से कर रहा हूँ। मैं उसका पैग़ाम लोगों तक पहुँचाता ही रहूँगा, चाहे मुझे अपनी जान ही देनी पड़े।"

प्यारे नबी (सल्ल०) की यह बात सुनकर चचा अबू-तालिब बहुत मुतास्सिर हुए और कहने लगे—

भतीजे! जाओ, अपना काम जारी रखो, जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, कोई तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

मक्का के सरदारों ने जो यह सुना तो अपना-सा मुँह लेकर वापस चले गए।

लालच से भी काम न चला

प्यारे नबी (सल्ल०) से मक्कावाले अब सौदेबाज़ी पर उतर आए। इस काम के लिए उन्होंने उतबा-बिन-रबीआ को चुना। वह बहुत ही अक़्लमंद, मक्कार और बातें बनाने में उस्ताद था। एक दिन वह प्यारे नबी (सल्ल०) के पास पहुँचा और बहुत ही हमदर्दी के साथ कहने लगा—

"मुहम्मद! क्या बात है, तुम चाहते क्या हो? अगर तुमको दौलत की ख़ाहिश है तो हम इतनी दौलत देने के लिए तैयार हैं जो तुमने कभी देखी भी न होगी। अगर तुम मक्का की सरदारी चाहते हो तो आज ही तुमको अपना बादशाह मान लेते हैं। अगर तुमको किसी ख़ूबसूरत औरत से शादी करने की तमन्ना है तो हम अरब की सबसे ज़्यादा हसीन औरत तुम्हारे लिए पेश कर देंगे। लेकिन लोगों में जो बातें फैला रहे हो, उन्हें फैलाना बन्द कर दो।"

उतबा की बातें सुनकर प्यारे नबी (सल्ल०) पहले तो मुस्कराए। फिर नबी (सल्ल०) ने क़ुरआन मजीद की वे आयतें सुनाना शुरू कर दीं जिनमें सिर्फ़ एक अल्लाह की बन्दगी की तरफ़ बुलाया गया था और शिर्क से रोका गया था। उसके अज़ाब से डराया गया था। उतबा पर इसका इतना असर हुआ कि वह थर-थर काँपने लगा। वह उठा और लड़खड़ाता हुआ वापस हो गया।

उसके चेहरे का बदला हुआ रंग देखकर साथियों ने पूछा, "ख़ैरियत तो है उतबा! क्या करके आए?"

"मुहम्मद जो कलाम पेश करते हैं, उसमें बला का असर है।" उतबा ने जवाब दिया।

"ख़ुदा की क़सम! न वे जादूगर हैं और न शायर। मेरी तो यह राय है कि उनको उनके हाल पर छोड़ दो। अगर वे कामियाब हो गए, तो हमारी भी इज़्ज़त होगी और अगर वे नाकाम हुए तो तुम्हारी ख़ाहिश पूरी हो जाएगी। उतबा की यह राय सुनकर मक्कावाले यह कहते हुए चले गए, "उतबा! मुहम्मद ने तुम्हारे ऊपर भी जादू कर दिया है।"

ज़ुल्म की भट्टी

मक्कावालों को जब हर तरफ़ से मुँह की खानी पड़ी तो अब उन्होंने मुसलमानों को तरह-तरह से सताना शुरू कर दिया। वे प्यारे नबी (सल्ल०) के रास्ते में काँटे बिछा देते, रास्ता चलते नबी (सल्ल०) पर गन्दगी फेंकते। जब नबी (सल्ल०) काबा में नमाज़ पढ़ते तो उनके गले में कपड़ा डालकर इतने बल देते कि आप बेदम हो जाते। नबी (सल्ल०) सजदे में जाते तो नबी (सल्ल०) के ऊपर ऊँट की ओझ डाल देते जिससे नबी (सल्ल०) का उठना मुश्किल हो जाता।

(1) हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि०)

ज़ालिम उनको दहकते हुए अंगारों पर चित लिटा देते और उनके सीने पर पैर रखकर खड़े हो जाते, ताकि ये बेचारे करवट न ले सकें, यहाँ तक कि पीठ की चर्बी से आग बुझ जाती।

(2) हज़रत बिलाल-बिन-रबाह (रज़ि०)

वे एक हब्शी ग़ुलाम थे। जब मुसलमान हो गए तो उनका मालिक उमय्या-बिन-ख़लफ़ उनको तपती हुई रेत पर लिटाकर सीने पर पत्थर रख देता। कभी गले में रस्सी बाँधकर लड़कों के हवाले कर देता, वे उनको खींचे-खींचे फिरते। बाद में यही बिलाल (रज़ि०) मस्जिदे-नबवी के मुअज़्ज़िन बनाए गए थे।

(3) हज़रत अम्मार (रज़ि॰)

उनको भी उसी तरह रेत पर लिटाया जाता। उनके बाप हज़रत यासिर (रज़ि॰) और माँ हज़रत सुमय्या (रज़ि॰) तो ज़ुल्म सहते-सहते अल्लाह को प्यारे हो गए।

(4) हज़रत उसमान-बिन-अफ़्फ़ान (रज़ि॰)

वे जब मुसलमान हुए तो उनके चचा ने उनको रस्सी से बाँधकर ख़ूब मारा।

इसी तरह बहुत-से मुसलमानों को सताया जाता रहा, मगर उनमें से कोई भी इस्लाम से न फिरा।

इस्लाम फैलता गया

हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰)

उनका क़बीला ग़िफ़ार मक्का से थोड़ी दूर पर आबाद था। अबू-ज़र बुतपरस्ती छोड़ चुके थे, लेकिन यह नहीं जानते थे कि एक ख़ुदा की बन्दगी कैसे की जाए। वे हर वक़्त सोचते ही रहते थे। एक दिन उनको पता चला कि मक्का में मुहम्मद (सल्ल॰) नाम के कोई साहब हैं, जो एक ख़ुदा की बन्दगी करने का तरीक़ा बताते हैं। अबू-ज़र (रज़ि॰) घर से रवाना हो गए। मक्का पहुँचे तो एहतियात की वजह से किसी से प्यारे नबी (सल्ल॰) का पता पूछना मुनासिब न समझा। इत्तिफ़ाक़ से हज़रत अली (रज़ि॰) से मुलाक़ात हो गई। वे उनको नबी (सल्ल॰) के पास ले गए। आप (सल्ल॰) ने उनको दीन की बातें बताईं। क़ुरआन मजीद की कुछ आयतें सुनाईं। अबू-ज़र (रज़ि॰) को पूरा इत्मीनान हो गया। उसी वक़्त वे मुसलमान हो गए।

मुसलमान होने के बाद वे सीधे काबा पहुँचे, जहाँ क़ुरैशी सरदार बैठे बातें कर रहे थे। काबा में जाकर उन्होंने ज़ोर से कलिमा पढ़ा। बस फिर क्या था। सब उनपर टूट पड़े और मारने-पीटने लगे। इतने में अब्बास (रज़ि॰) उधर आ निकले। उन्होंने उनको पहचान लिया और ज़ोर से चीख़े, "अरे यह क्या ग़ज़ब कर रहे हो! यह ग़िफ़ार क़बीले का आदमी है। अगर कहीं मर गया तो तुम्हारे क़ाफ़िलों का उधर से गुज़रना बन्द हो जाएगा।"

यह सुनते ही क़ुरैश के हाथ रुक गए। लेकिन हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) ने फिर बुलन्द आवाज़ से कलिमा पढ़ा। क़ुरैश फिर मारने के लिए दौड़े, लेकिन हज़रत अब्बास (रज़ि॰) ने उनको बचा लिया और ख़ैरियत के साथ उनके घर की तरफ़ रवाना कर दिया। घर पहुँचकर उन्होंने दीन फैलाना शुरू कर दिया। देखते-देखते आधा क़बीला इस्लाम की छाँव में आ गया।

हज़रत हमज़ा (रज़ि॰)

वे प्यारे नबी (सल्ल॰) के चचा और दूध-शरीक भाई थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) के साथ खेले हुए थे। नबी (सल्ल॰) उनसे सिर्फ़ दो-तीन साल छोटे थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) से वे बहुत मुहब्बत करते थे। वे बहुत बहादुर थे, सैर और शिकार के शौक़ीन थे। सुबह को शिकार के लिए निकल जाते तो शाम को लौटते।

एक दिन अबू-जह्ल ने प्यारे नबी (सल्ल॰) को, तौबा-तौबा, बहुत बुरी बातें कहीं। लेकिन नबी (सल्ल॰) ख़ामोश रहे। गाली का जवाब देकर भला नबी (सल्ल॰) अपनी ज़बान क्यों गन्दी करते, सब्र किया और चले गए।

एक लौंडी औरत, यह सारा तमाशा देख रही थी। शाम को जब हमज़ा (रज़ि॰) शिकार से वापस आए तो उसने पूरा क़िस्सा कह सुनाया। हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) ग़ुस्से से बेक़ाबू हो गए। तीर कमान लिए हुए आदत के मुताबिक़ काबा में आए। काबा का तवाफ़ करने के बजाय सीधे अबू-जह्ल के पास पहुँचे और कमान उसके सिर पर मारकर बोले—

"ले मैं मुसलमान हो गया हूँ— जो कुछ करना है कर ले।"

अबू-जह्ल हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) को ग़ुस्से में देखकर ख़ामोश रहा और वे सीधे अपने घर चले गए। सबके सामने मुसलमान होने का ऐलान तो कर दिया, लेकिन घर पहुँचकर सोच में पड़ गए। सारी रात सोचते-ही-सोचते गुज़र गई। एक-एक करके इस्लाम की अच्छाइयाँ सामने आती गईं। सुबह होते ही वे प्यारे नबी (सल्ल॰) के पास गए और अपने मुसलमान होने का एलान कर दिया। चचा जान के इस्लाम में आने से प्यारे नबी (सल्ल॰) बहुत ख़ुश हुए। लेकिन मक्कावालों में खलबली मच गई।

हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰)

जब प्यारे नबी (सल्ल॰) पैग़म्बर हुए तो हज़रत उमर (रज़ि॰) उस वक़्त सत्ताईस साल के थे। वे मिज़ाज के ज़रा तेज़ और ग़ुस्सावर थे। मुसलमानों को सताने और उनपर ज़ुल्म करने में वे कोई कमी नहीं उठा रखते थे। हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) के इस्लाम क़बूल करने की ख़बर जब उनको मिली तो वे आगबगूला हो गए, मगर वे उनका कुछ बिगाड़ न सकते थे। आख़िरकार फ़ैसला कर लिया कि– तौबा-तौबा हुज़ूर (सल्ल॰) का काम तमाम कर दें।

ग़ुस्से में भरे हुए तलवार लेकर घर से निकल खड़े हुए। रास्ते में एक साहिब ने पूछा, "उमर! कहाँ जा रहे हो?"

"मुहम्मद का काम तमाम करने जा रहा हूँ।" उमर ने ग़ुस्से में जवाब दिया।

पहले अपने घर की ख़बर लो। तुम्हारी बहन और बहनोई दोनों मुसलमान हो चुके हैं। उन साहिब ने कहा।

यह सुनते ही हज़रत उमर (रज़ि॰) फ़ौरन पलटे और बहन के घर पहुँचे। वहाँ हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि॰) उनको क़ुरआन मजीद की तालीम दे रहे थे। आहट पाकर वे छिप गए। उनकी बहन फ़ातिमा (रज़ि॰) ने क़ुरआन के पन्ने छिपा दिए, लेकिन आवाज़ हज़रत उमर (रज़ि॰) के कानों में पहुँच चुकी थी। उन्होंने पूछा, "तुम लोग क्या कर रहे थे?"

"बातें कर रहे थे।" बहन ने बात बना दी।

"मुझे मालूम है। तुम लोग बेदीन हो गए हो।" यह कहकर उमर अपने बहनोई पर टूट पड़े। मारते-मारते बेदम कर दिया। शौहर को बचाने के लिए बहन सामने आ गईं। हज़रत उमर ने अब बहन को मारना शुरू कर दिया। आख़िरकार जिस्म से ख़ून रिसने लगा और वे गिर गईं।। गिरते-गिरते कहने लगीं–

"भाई, जितना चाहो मार लो, लेकिन इस्लाम को मैं नहीं छोड़ सकती!"

बहन के मुँह से ये शब्द सुनकर और उसके जिस्म से रिस्ता हुआ ख़ून देखकर हज़रत उमर (रज़ि॰) का हाथ रुक गया। बहन से पूछने लगे–

"अच्छा यह बताओ, तुम लोग क्या पढ़ रहे थे?"

"हम क़ुरआन मजीद पढ़ रहे थे।" बहन ने जवाब दिया।

"ज़रा मुझे भी दिखाओ।" हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा।

सबसे पहले जिन आयतों पर उनकी नज़र पड़ी, वे तौहीद के बारे में थीं। उनको पढ़कर हज़रत उमर (रज़ि॰) पर इतना असर हुआ कि ख़ुद-बख़ुद उनकी ज़बान से निकल गया— "बेशक, अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं।"

वहाँ से उठकर हज़रत उमर (रज़ि॰) सीधे 'दारे-अरक़म' पहुँचे, जहाँ उस वक़्त हुज़ूर (सल्ल॰) और सहाबा (रज़ि॰) ठहरे हुए थे। दरवाज़े पर जाकर दस्तक दी। चूँकि उनके हाथ में तलवार थी, इसलिए सहाबा डरे, लेकिन हुज़ूर (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "आने दो।"

जब वे अन्दर गए तो हुज़ूर (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "कहो उमर। कैसे आने हुआ?"

"इस्लाम क़बूल करने के लिए हाज़िर हुआ हूँ।" हज़रत उमर (रज़ि॰) की आवाज़ काँप रही थी।

यह सुनते ही नबी (सल्ल॰) की मुबारक ज़बान से 'अल्लाहु अकबर' निकल गया, और साथ ही सहाबा (रज़ि॰) ने भी ज़ोर से अल्लाहु अकबर का नारा लगाया।

हज़रत उमर (रज़ि॰) के इस्लाम क़बूल की ख़बर सुनते ही मक्का के सरदारों के हाथों के तोते उड़ गए और वे सोच में पड़ गए—

"हमज़ा और उमर दोनों मुसलमान हो गए। ख़ुदा ख़ैर करे!"

वही हुआ। मुसलमान होते ही हज़रत उमर (रज़ि॰) सबको लेकर काबा में इस शान से दाख़िल हुए कि आगे-आगे प्यारे नबी (सल्ल॰) थे। आप (सल्ल॰) के दाएँ और बाएँ हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) और हज़रत उमर (रज़ि॰) थे। दोनों के हाथ में नंगी तलवारें थीं। उनके पीछे बाक़ी सब मुसलमान थे। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने पहली बार काबा में जमाअत से नमाज़ अदा की। अब तो मुसलमानों की तादाद दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी।

हिजरत की इजाज़त

मक्कावालों को अल्लाह का दीन पहुँचाते हुए पूरे पाँच साल गुज़र गए। अब तो कोई घर ऐसा न था जिसका कोई-न-कोई शख़्स मुसलमान न हो चुका हो और घरवालों ने उसे इस्लाम को छोड़ देने के लिए तरह-तरह से मजबूर न किया हो। वे अल्लाह के बन्दे हँसी-खुशी तकलीफ़ें बर्दाश्त करते रहे और दीन पर क़ायम रहे। अपनी इस नाकामी और बेबसी पर मक्कावालों को बहुत ज़्यादा गुस्सा आया। अब तो उनका हाल दीवानों का-सा हो गया था। जिस मुसलमान को पाते उससे चिपट जाते और बुरी तरह उसे मारते-पीटते।

बहरहाल जब मुसलमानों के लिए मक्का में रहना और आज़ादी के साथ इस्लाम पर चलना मुमकिन न रहा तो प्यारे नबी (सल्ल॰) ने उनको इजाज़त दे दी कि वे हबशा को हिजरत कर जाएँ। हबशा अरबवालों के लिए जाना पहचाना देश था। लाल सागर (बहरे-अहमर) के दूसरी तरफ़ पड़ता था। अरब कारोबार के लिए वहाँ जाया करते थे। वहाँ का बादशाह था तो ईसाई, मगर बहुत ही नेक और भला था।

हबशा की हिजरत

मुसलमानों को हबशा जाने की जैसे ही इजाज़त मिली, पन्द्रह आदमियों का एक क़ाफ़िला ख़ामोशी के साथ जिद्दा पहुँचा। वहाँ एक कारोबारी जहाज़ हबशा जाने के लिए तैयार खड़ा था। जैसे ही वे लोग सवार हुए जहाज़ रवाना हो गया। दूसरे दिन जब मक्कावालों को इस बात का पता चला तो उन्होंने अपने आदमी फ़ौरन दौड़ाए। मगर मुसलमानों का जहाज़ बहुत दूर निकल चुका था। ये अपना-सा मुँह लेकर वापस आ गए। अब क्या था, हबशा जाने का सिलसिला शुरू हो गया। जिस मुसलमान को मौक़ा मिलता चुपके से निकल जाता। इस तरह जानेवालों की तादाद तिरासी (83) तक पहुँच गई।

अब तो मक्कावालों में खलबली मच गई। सरदारों ने तय किया कि कुछ नुमाइन्दों को फ़ौरन हबशा के बादशाह नजाशी के पास भेजा जाए, जो कह

सुनकर उन मुसलमानों को वापस ले आएँ। इस काम के लिए अम्र-बिन-आस और अब्दुल्लाह-बिन-रबीआ को चुना गया। वे दोनों बादशाह और उसके दरबारियों के लिए तोहफ़े वग़ैरा लेकर हबशा पहुँचे। पहले तो उन्होंने दरबारियों को तोहफ़े देकर और चापलूसी से अपने में मिला लिया और दूसरे दिन बादशाह के दरबार में हाज़िर होकर यह दरख़ास्त पेश की—

"हमारे शहर के कुछ नादानों ने एक नया मज़हब अपना लिया है। हमने उनको मना किया तो वे आपके देश में भाग आएँ हैं। उन्हें हमारे सिपुर्द कर दिया जाए।"

दरबारियों ने हाँ-में-हाँ मिलाई, मगर बादशाह था समझदार। उसने मुसलमानों को दरबार में बुलवाया।

हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) की तक़रीर

जब मुसलमान नजाशी के दरबार में हाज़िर हुए तो वह उनसे बोला—

"तुमने कौन-सा नया मज़हब (धर्म) अपनाया है जो तुम्हारे वतनवाले शिकायत कर रहे हैं?"

मुसलमानों की तरफ़ से हज़रत जाफ़र-बिन-अबी-तालिब (रज़ि॰) जवाब देने के लिए खड़े हुए। कहने लगे—

"ऐ बादशाह! हम नादान थे, बुत पूजते थे, मुरदार खाते थे, बुरे-बुरे काम करते थे, पड़ोसियों का हक़ मारते थे। एक-दूसरे को सताते थे, जुआ खेलते थे। अल्लाह तआला को हमारी हालत पर तरस आया, उसने हममें एक ऐसा शख़्स पैदा किया जिसे हमारी पूरी क़ौम शरीफ़, नेक, सच्चा और अमानतदार मानती थी। उसने हमें इस्लाम की दावत दी। हमें बताया कि हम पत्थरों को पूजना छोड़ दें, सच बोलें, बेवजह किसी का ख़ून न बहाएँ, यतीमों का माल न खाएँ। पड़ोसियों को आराम पहुँचाएँ, नेक और शरीफ़ औरतों को बदनाम न करें, नमाज़ पढ़ें, रोज़े रखें। हम उसपर ईमान लाए, उसे आख़िरी नबी माना, बुराइयों को छोड़ दिया। यह है हमारा जुर्म जिसकी वजह से हमारी क़ौम हमारी दुश्मन बन गई है और हमें मजबूर करती है कि फिर वही बुराइयाँ हम करने लगें जो हम छोड़ चुके हैं। ऐ बादशाह! हमें उम्मीद है कि

आप हमें इन ज़ालिमों के सिपुर्द नहीं करेंगे।"

हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) की इस तक़रीर से बादशाह बहुत मुतास्सिर हुआ। वह क़ुरैश के नुमाइन्दों पर बहुत नाराज़ हुआ और उन्हें दरबार से निकलवा दिया।

यह तरकीब भी न चली

क़ुरैश के नुमाइन्दे बहुत शर्मिन्दा हुए। सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए। आख़िरकार एक तरकीब सूझी। दूसरे दिन किसी-न-किसी तरह दरबार में फिर पहुँचे और बादशाह से कहा कि हुज़ूर! ज़रा उनसे मालूम कीजिए कि हज़रत ईसा के बारे में इनका क्या ख़याल है।"

नजाशी ने मुसलमानों को फिर बुलाया और यही सवाल उनसे किया। पहले तो मुसलमान घबराए। अगर सच बात कहते हैं तो वह ईसाइयों के आम अक़ीदों के ख़िलाफ़ होगी। बादशाह नाराज़ हो जाएगा। लेकिन अल्लाह पर भरोसा करके हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) ने सूरा-मरयम की कुछ आयतें पढ़कर सुनाईं। नजाशी ध्यान से सुनता रहा और रोता रहा। यहाँ तक कि उसकी दाढ़ी आँसुओं से तर हो गई। आख़िर में उसने ज़मीन से एक तिनका उठाया और कहने लगा—

"ख़ुदा की क़सम! जो कुछ तुमने कहा है, हज़रत मसीह (अलैहि॰) इस तिनके के बराबर भी उससे ज़्यादा नहीं हैं।"

फिर वह क़ुरैश के नुमाइन्दों से बोला—

"तुम वापस जाओ। मैं इन मज़लूमों को तुम्हारे हवाले नहीं कर सकता।"

मक्कावाले अपना-सा मुँह लेकर वापस चले गए। मुसलमान आराम से रहने लगे। कुछ वक़्त बाद नजाशी ने भी इस्लाम क़बूल कर लिया।

बाइकाट

दो साल और बीत गए।

मुसलमानों को सताने और तकलीफ़ें पहुँचाने की जितनी भी तरकीबें हो सकती थीं, वे सब नाकाम हो चुकी थीं। जब मक्कावाले मुसलमानों को दीन

से न फेर सके, बल्कि उल्टी उनकी तादाद बढ़ती ही गई, तो अब उन्होंने चचा अबू-तालिब और बनी-हाशिम ख़ानदान से बदला लेने की स्कीम बनाई। वे साफ़ कहते थे कि सारा क़ुसूर हाशमियों का है। आज वे अपना हाथ मुहम्मद पर से उठा लें, कल ही उनकी यह सारी दौड़-धूप ख़त्म हो जाएगी। इसलिए मक्का के तमाम क़बीलों ने यह तय किया कि "कोई आदमी बनी-हाशिम ख़ानदान से लेन-देन न करे। न उनसे मिले, न उनको खाने-पीने का सामान पहुँचाए, जब तक कि वे मुहम्मद को हमारे हवाले न कर दें।" यह अह्दनामा लिखकर काबा के दरवाज़े पर लटका दिया गया।

बाइकाट की ख़बर सुनकर चचा अबू-तालिब अपने पूरे ख़ानदान बनी-हाशिम को लेकर उस घाटी में चले आए, जिसे 'शेबे-अबी-तालिब' (अबू-तालिब की घाटी) कहते हैं। हाँ, सिर्फ़ अबू-लहब नहीं गया। उसने ख़ानदानवालों का साथ छोड़ दिया।

मुसीबत-भरे तीन साल

प्यारे नबी (सल्ल०) के साथ तमाम मुसलमान भी उस घाटी में चले आए थे। कुछ दिनों तक तो खाने-पीने का सामान चलता रहा। उसके बाद फ़ाक़ों की नौबत आ गई। जब भूख सहन न हुई तो पेड़ों के पत्तों और उनकी छाल को इस्तेमाल किया जाता। कुछ लोग भिगो-भिगोकर चमड़े चबाते। बड़े किसी-न-किसी तरह सहन कर लेते, मगर बच्चों का बहुत बुरा हाल था। वे इस तरह बिलख-बिलखकर रोते कि सख़्त-से-सख़्त दिल भी पिघल जाता।

तीन साल तक बनी-हाशिम और मुसलमान ये मुसीबतें झेलते रहे। आख़िरकार अल्लाह की रहमत जोश में आई। क़ुरैशियों में फूट पड़ गई। कुछ जवान इस ज़ुल्म-भरे फ़ैसले के ख़िलाफ़ तलवारें लेकर उठ खड़े हुए। उनके साथ बहुत-से लोग हो गए। नौबत जंग की आ गई, लेकिन मक्का के सरदार आपस में ख़ून-ख़राबा नहीं चाहते थे। इसलिए यह बाइकाट ख़त्म कर दिया गया।

पूरे तीन साल बाद बनी-हाशिम दोबारा अपने-अपने घरों में वापस आ गए।

ग़म का साल

ख़ानदान-भर में चचा अबू-तालिब और हज़रत ख़दीजा, इन्हीं दोनों की उम्र सबसे ज़्यादा थी। इन तीन सालों में जिन तकलीफ़ों का उन्हें सामना करना पड़ा, उनकी वजह से तन्दुरुस्ती और ज़्यादा ख़राब हो गई। नतीजा यह हुआ कि घाटी से वापस आते ही चचा अबू-तालिब चल बसे। उनके मरने के कुछ दिनों बाद ही हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) भी अल्लाह को प्यारी हो गईं। उन दोनों की मौत से प्यारे नबी (सल्ल॰) पर दुख और ग़म का पहाड़ टूट पड़ा।

चचा अबू-तालिब की वजह से दुश्मन कुछ-न-कुछ नर्मी से काम लेते थे, लेकिन अब तो उन्हें खुली छूट मिल गई थी। प्यारे नबी (सल्ल॰) को सताने के नित नये ढंग इख़्तियार करने लगे। इनमें अबू-लहब— नबी (सल्ल॰) का चचा— बहुत आगे-आगे था। इन्हीं सब मुसीबतों और परेशानियों की वजह से प्यारे नबी (सल्ल॰) उस साल को 'ग़म का साल' कहते थे।

ताइफ़ का सफ़र

मक्कावालों की दुश्मनी दिन-बदिन बढ़ती जा रही थी। इसलिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने सोचा कि ताइफ़ जाकर वहाँ के लोगों को दीन की दावत देना चाहिए। ताइफ़ मक्का से लगभग सत्तर मील दक्षिण-पूर्व में है। वह पहाड़ी इलाक़ा है। वहाँ की आबो-हवा सेहत के लिए बहुत फ़ायदेमन्द है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) को साथ लेकर ताइफ़ गए। उन्होंने वहाँ के बड़े-बड़े लोगों से मुलाक़ात की, लेकिन उन्होंने हुज़ूर (सल्ल॰) की बातों पर कोई ध्यान न दिया, बल्कि एक शैतानी हरकत यह की कि शहर के गुण्डों को उकसा दिया। वे नबी (सल्ल॰) के पीछे पड़ गए। वे नबी (सल्ल॰) का मज़ाक़ उड़ाते, उनपर पत्थर बरसाते। ज़ालिम ताक-ताककर नबी (सल्ल॰) के पैरों पर पत्थर मारते थे, जिसकी वजह से नबी (सल्ल॰) के पैर ख़ून में नहा गए और उनकी जूतियों में ख़ून भर गया। जब नबी (सल्ल॰) कहीं बैठ जाते तो ये बदमाश नबी (सल्ल॰) का हाथ पकड़कर उठा देते और फिर पथराव शुरू कर देते। आख़िरकार नबी (सल्ल॰) ने अंगूर के एक बाग़

में पनाह ली, तब इन गुंडों से छुटकारा मिला। थोड़ी देर आराम करने के बाद नबी (सल्ल॰) मक्का वापस लौट गए। ताइफ़वालों के इस बर्ताव के बावजूद प्यारे नबी (सल्ल॰) ने उनके हक़ में बद्दुआ नहीं की, बल्कि यही दुआ करते रहे—

"ऐ अल्लाह! इन्हें माफ़ फ़रमा दे। ये मुझे पहचानते नहीं हैं।"

मेराज

उसी साल एक रात प्यारे नबी (सल्ल॰) आराम कर रहे थे कि जिबरील (अलैहि॰) तशरीफ़ लाए और कहने लगे— "अल्लाह तआला ने आपको बुलाया है।" नबी (सल्ल॰) हज़रत जिबरील (अलैहि॰) के साथ हो लिये। प्यारे नबी (सल्ल॰) बुराक़ पर सवार होकर पहले बैतुल-मक़्दिस गए। वहाँ नबी (सल्ल॰) ने हज़रत इबराहीम (अलैहि॰), हज़रत मूसा (अलैहि॰) और हज़रत ईसा (अलैहि॰) के साथ नमाज़ अदा की। फिर वहाँ से आसमानों का सफ़र शुरू हुआ। नबी (सल्ल॰) हज़रत जिबरील (अलैहि॰) के साथ आसमानों को तय करते हुए 'सिदरतुल-मुन्तहा' तक पहुँचे। यहाँ अल्लाह तआला नबी (सल्ल॰) से बहुत क़रीब हो गया और उनसे बहुत-सी बातें कीं। इस मौक़े पर अल्लाह तआला ने रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ें फ़र्ज़ कीं और यह फ़रमा दिया कि अगर मुसलमान दिल लगाकर इन नमाज़ों को अदा करेंगे तो उनको पचास वक़्त की नमाज़ों का सवाब मिलेगा। अल्लाह तआला ने नबी (सल्ल॰) को जन्नत और दोज़ख़ की सैर भी कराई।

यह सारा सफ़र सिर्फ़ एक ही रात में तय हो गया। इसी का नाम 'मेराज' है।

मदीना में इस्लाम

हज के ज़माने में दूर-दूर से लोग मक्का आया करते थे। मौक़ा निकालकर प्यारे नबी (सल्ल॰) उनके पास जाते और इस्लाम का पैग़ाम उनको पहुँचाते थे। इस साल यसरिब से आनेवालों में से छह आदमियों ने इस्लाम की दावत क़बूल कर ली और मुसलमान हो गए। यह प्यारे नबी (सल्ल॰) की नुबूवत का ग्यारहवाँ साल था। अगले साल यसरिब के बारह

आदमियों ने आकर इस्लाम क़बूल किया। उनकी दरख़ास्त पर दीन की तालीम देने के लिए नबी (सल्ल॰) ने हज़रत मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰) को उनके साथ कर दिया। हज़रत मुसअब (रज़ि॰) की दौड़-धूप से वहाँ घर-घर में इस्लाम का पैग़ाम पहुँच गया।

नुबूवत के तेरहवें साल बहत्तर मुसलमानों का एक गरोह यसरिब से मक्का आया। उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल॰) से यसरिब तशरीफ़ ले चलने के लिए दरख़ास्त की। उस वक़्त हुज़ूर (सल्ल॰) के पास उनके चचा अब्बास मौजूद थे, जो अब तक मुसलमान नहीं हुए थे। वे यसरिबवालों से बोले— "अगर तुम मेरे भतीजे को अपने साथ ले जाना चाहते हो तो वादा करो कि हर हाल में तुम इसका साथ दोगे। अगर हमारी तरह तुम इसकी हिफ़ाज़त कर सकते हो तो ले जाओ, वरना अभी जवाब दे दो।"

"हम ख़ुशी के साथ वादा करते हैं।" यसरिबवालों ने एक ज़बान होकर जवाब दिया। "लेकिन हमें भी इस बात का इत्मीनान दिलाया जाए कि जब हुज़ूर (सल्ल॰) के वहाँ क़दम जम जाएँगे और ग़लबा हासिल हो जाएगा तो आप (सल्ल॰) हमें छोड़कर अपने वतन वापस नहीं चले जाएँगे।"

"मैं तुम्हें इस बात का यक़ीन दिलाता हूँ।" प्यारे नबी (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ।"

हिजरत

यह बात तय होते ही प्यारे नबी (सल्ल॰) ने मक्का के मुसलमानों को इजाज़त दे दी कि वे ख़ामोशी के साथ यसरिब चले जाएँ। बस फिर क्या था, जानेवालों का एक ताँता बँध गया। कुछ दिनों तक यह बात छिपी रही, लेकिन जब घर-के-घर खाली होने लगे तो मक्कावालों के कान खड़े हुए। उन्हें बड़ी फ़िक्र पैदा हो गई। उन्होंने आपस में मश्वरा किया—

"मुसलमानों को यसरिब जाने से रोका जाए, नहीं तो सीरिया जानेवाला हमारा तिजारती रास्ता ख़तरे में पड़ जाएगा।" एक सरदार ने कहा।

"ऐसा क्यों न करें कि हम सब क़बीलेवाले मिलकर मुहम्मद का काम तमाम कर दें। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।" अबू-जह्ल बोला।

सब इस राय से सहमत हो गए। तौबा-तौबा नबी (सल्ल॰) को ख़त्म करने की तैयारियाँ होने लगीं। उधर अल्लाह तआला ने प्यारे नबी (सल्ल॰) को यसरिब की तरफ़ हिजरत कर जाने का हुक्म दे दिया। हुज़ूर (सल्ल॰) ने यह बात सिर्फ़ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को बताई और उन्हें भी साथ चलने के लिए तैयार रहने को कह दिया। नबी (सल्ल॰) को सबसे ज़्यादा फ़िक्र उन अमानतों की थी, जिन्हें मक्कावालों ने हिफ़ाज़त के लिए नबी (सल्ल॰) के पास रख दिया था। बहरहाल नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰) को बुलाकर ये सब अमानतें उनके हवालें कर दीं और समझा दिया कि जिसकी-जिसकी अमानतें हैं, उनको पहुँचाकर यसरिब आ जाएँ।

फ़िर मुँह की खाई

ख़ुदा का करना कि जो रात मक्कावालों ने अपनी स्कीम पर अमल करने के लिए तय की थी, उसी रात को प्यारे नबी (सल्ल॰) ने हिजरत करने का इरादा कर लिया।

रात हो गई। मक्कावालों ने आकर प्यारे नबी (सल्ल॰) के घर को घेर लिया और तय यह किया कि जब सुबह तड़के प्यारे नबी (सल्ल॰) घर से बाहर निकलें तो सब मिलकर नबी (सल्ल॰) पर हमला कर दें। उधर जब आध ी रात गुज़री तो प्यारे नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अली (सल्ल॰) को अपने बिस्तर पर लिटा दिया और ख़ुद दबे पाँव हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के घर की तरफ़ रवाना हो गए। मक्कावालों की आँखों पर जैसे पर्दा पड़ गया हो वे नबी (सल्ल॰) को देख भी न सके। वहाँ से नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को साथ लिया और मक्का से पाँच मील के फ़ासले पर एक पहाड़ की गुफ़ा में जाकर छिप गए। यह सौर गुफ़ा कहलाती है।

सुबह के वक़्त जब मक्कावालों को यह मालूम हुआ कि प्यारे नबी (सल्ल॰) तो रात ही में कहीं चले गए तो मारे गुस्से के दीवाने हो गए। उन्होंने एलान कराया कि "जो कोई मुहम्मद को पकड़कर लाएगा उसे सौ ऊँट इनाम में मिलेंगे।" बस फिर क्या था, हर तरफ़ लोग दौड़ गए, लेकिन हुज़ूर (सल्ल॰) का कहीं पता न चला। यहाँ तक कि कुछ लोग ग़ारे-सौर (सौर गुफा) के मुँह

पर भी पहुँच गए। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) उनकी आवाज़ें सुनकर डरे, लेकिन हुज़ूर (सल्ल॰) ने उनको यह कहकर तसल्ली दी—

"घबराओ नहीं, अल्लाह हमारे साथ है।"

तीन दिन और तीन रातें प्यारे नबी (सल्ल॰) और उनके साथी ने उसी गुफा में बसर कीं। चौथे दिन गुफा से बाहर आए। एक आदमी को रास्ता बताने के लिए पहले ही तय कर लिया था। इसलिए वह ऊँट लेकर वक़्त पर मौजूद था। तीन आदमियों का यह छोटा-सा क़ाफ़िला आम रास्ते को छोड़कर एक-दूसरे रास्ते से यसरिब की तरफ़ रवाना हो गया। इस क़ाफ़िले में प्यारे नबी (सल्ल॰) के साथ हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) और एक रास्ता बतानेवाला आदमी शामिल था।

नबी (सल्ल॰) का क़ियाम और मस्जिदे-नबवी की तामीर

छह दिन तक सफ़र करने के बाद यह क़ाफ़िला 'क़ुबा' पहुँचा। यह बस्ती यसरिब से कोई तीन मील पहले पड़ती थी। लोग नबी (सल्ल॰) के इन्तिज़ार में थे। हर तरफ़ शोर मच गया कि "अल्लाह के रसूल तशरीफ़ ले आए।" मदीना से भी लोग आना शुरू हो गए। नबी (सल्ल॰) क़ुबा पन्द्रह दिन ठहरे और वहाँ सबसे पहली मस्जिद की बुनियाद डाली, और उसके बनाने में नबी (सल्ल॰) सबके साथ बराबर के शरीक रहे। हज़रत अली (रज़ि॰) मक्का से आकर इस काफ़िले में शरीक हो चुके थे। अब नबी (सल्ल॰) यसरिब की तरफ़ रवाना हुए। हर आदमी यह चाहता था कि हुज़ूर (सल्ल॰) मेरे यहाँ ठहरें। नबी (सल्ल॰) ने यह कहकर मामला तय कर दिया कि मेरी ऊँटनी जिसके घर के सामने जाकर ठहर जाएगी, मैं उसी का मेहमान बनूँगा।"

ऊँटनी चलते-चलते हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी (रज़ि॰) के मकान के सामने खड़ी हो गई। उनकी ख़ुशी की कोई हद न रही। जिस दिन प्यारे नबी (सल्ल॰) यसरिब में तशरीफ़ लाए, उस शहर की क़िस्मत जाग उठी। बजाए यसरिब के अब लोग उसे 'मदीनतुन्नबी' यानी प्यारे नबी (सल्ल॰) का शहर कहने लगे, जो आगे चलकर सिर्फ़ 'मदीना' के नाम से मशहूर हो गया। नबी

(सल्ल॰) लगभग सात महीने तक हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी के यहाँ ठहरे। इस बीच वहीं पड़ोस में मस्जिदे-नबवी भी बनती रही। इसके बनाने में भी नबी (सल्ल॰) सबके साथ शरीक रहे। सहाबा (रज़ि॰) ने कहा कि आप परेशानी न उठाएँ। लेकिन नबी (सल्ल॰) अपने काम में लगे रहे। इसी मस्जिद से मिले हुए हुज़ूर (सल्ल॰) के लिए कमरे भी बनाए गए। जब कमरे बनकर तैयार हो गए तो प्यारे नबी (सल्ल॰) उनमें तशरीफ़ ले गए।

भाईचारा

"तमाम मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं।" इसका बेहतरीन नमूना मदीना में सामने आया। जब मक्का के मुसलमान (जो बाद में मुहाजिर कहलाए, क्योंकि वे दीन के लिए अपना घर-बार छोड़कर आए थे) मदीना पहुँचे तो उनके पास कुछ भी न था। गुज़र-बसर के लिए बड़ी परेशानी का सामना था। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने किया यह कि एक मक्कावाले और एक मदीनावाले को आपस में भाई बताया और फ़रमाया, "ये दोनों आपस में भाई-भाई हैं और हर चीज़ में शरीक हैं।" बस फिर क्या था। सबमें आपस में भाई-चारा हो गया। मदीनावालों ने अपनी हर चीज़ के दो हिस्से किए। एक हिस्सा खुद लिया और दूसरा अपने मुहाजिर भाई को दे दिया। उस दिन से मदीना के लोग अनसार कहलाए, जिसके मानी हैं 'मददगार'।

इस तरह प्यारे नबी (सल्ल॰) ने मुहाजिरों के रहने-सहने और खाने-पीने के मसले को बड़ी ख़ूबी से हल कर दिया। इससे एक मुहब्बत-भरा माहौल पैदा हो गया।

दुश्मनों का पहला हमला और बद्र की लड़ाई

मदीना में इस्लाम की तरक़्क़ी का हाल सुनकर मक्कावाले बहुत परेशान थे। सबसे ज़्यादा फ़िक्र उनको अपने कारोबार की थी। वे डर रहे थे कि अगर मुसलमानों ने सीरिया जानेवाले रास्ते को उनके लिए बन्द कर दिया तो उनका कारोबार ख़त्म हो जाएगा। इस ख़तरे को दूर करने के लिए उन्होंने

सोचा कि मदीना पर हमला करके मुसलमानों को बिलकुल कुचल दिया जाए। उन्होंने हमले की तैयारियाँ शुरू कर दीं। जब प्यारे नबी (सल्ल॰) को इसकी ख़बर मिली तो उन्होंने भी तैयारी का हुक्म दे दिया।

अभी मदीना में आए दूसरा ही साल था कि क़ुरैश के सरदारों ने अपनी पूरी तैयारी और साज़-सामान के साथ मदीना पर हमला कर दिया। उनके सिपाहियों की तादाद एक हज़ार थी। नबी (सल्ल॰) भी 313 मुसलमानों का छोटा-सा लश्कर लेकर मदीना से निकल खड़े हुए। रमज़ान का महीना, अरब की गर्मी, हथियारों की कमी, बस सिर्फ़ सहारा था अल्लाह की मदद का। मदीना से लगभग अस्सी मील चलकर बद्र नामक जगह पर दोनों फ़ौजें आमने-सामने हुईं।

रमज़ान की सतरह तारीख़ को लड़ाई शुरू हो गई। मुसलमान तादाद में कम ज़रूर थे, मगर सिर-धड़ की बाज़ी लगाकर लड़ रहे थे। देखते-ही-देखते मक्का के कई सरदार मार डाले गए। फिर दो अनसारी नौजवान बड़ी तेज़ी से आगे बढ़े और लपककर अबू-जह्ल का ख़ातिमा कर दिया। उतबा पहले ही मारा जा चुका था। बस फिर क्या था। काफ़िरों की फ़ौज में भगदड़ मच गई। उनके सत्तर सिपाही मारे गए और इतने ही गिरफ़्तार हुए। मुसलमानों के लश्कर में सिर्फ़ चौदह सिपाही शहीद हुए। उनमें छह मुहाजिर और आठ अनसारी थे।

यह इस्लाम और कुफ़्र की पहली लड़ाई थी, जिसमें अल्लाह ने मदद फ़रमाकर मुसलमानों की हिम्मत बढ़ा दी।

दुश्मनों का दूसरा हमला और उहुद की लड़ाई

बद्र की हार से मक्कावालों की नाक कट गई। उन्हें बहुत दुख था। उन्होंने क़सम खाई कि जब तक इस हार का बदला न ले लेंगे चैन से नहीं बैठेंगे। इसी लिए अभी से लड़ाई की तैयारियाँ शुरू कर दीं। मदीना में मुनाफ़िक़ों[1] का एक गरोह था। उसके सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई ने

1. मुनाफ़िक़ उसको कहते हैं जो दिखाने के लिए मुसलमान हो जाएं, मगर दिल से इस्लाम और

मक्कावालों को मदद देने का वादा कर लिया।

अगले ही साल मक्कावाले तीन हज़ार का लश्कर लेकर मदीना पर हमला करने के लिए रवाना हो गए। जब प्यारे नबी (सल्ल०) को ख़बर हुई तो नबी (सल्ल०) ने भी तैयारियाँ शुरू कर दीं, 11 शव्वाल सन् 3 हिजरी को एक हज़ार का लश्कर लेकर वे भी मदीना से निकल खड़े हुए। लेकिन रास्ते ही में अब्दुल्लाह-बिन-उबई अपने तीन सौ साथी लेकर अलग हो गया। मुसलमान घबराए, क्योंकि तीन हज़ार के मुक़ाबले में अब सिर्फ़ सात सौ मुसलमान रह गए थे। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उनको तसल्ली देते हुए फ़रमाया—

"अगर तुमने अल्लाह पर भरोसा रखा और हिम्मत न हारी तो ज़रूर जीत तुम्हारी ही होगी।"

मदीना से कुछ मील के फ़ासले पर उहुद के मैदान में दोनों फ़ौजें आमने-सामने हुईं। मुसलमानों की पुश्त पर उहुद पहाड़ था। उसमें एक दर्रा था। दुश्मन उसमें से आकर पीछे से हमला कर सकता था। इसलिए नबी (सल्ल०) ने पचास सिपाहियों को उसकी हिफ़ाज़त के लिए तैनात कर दिया और हुक्म दिया कि "हार हो या जीत, जब तक हुक्म न दिया जाए, तुम वहाँ से नहीं हटोगे।"

नाफ़रमानी का अंजाम

लड़ाई शुरू हो गई। तादाद में कम होने के बावजूद मुसलमान इतनी बहादुरी से लड़े कि दुश्मन के छक्के छूट गए और वे मैदान छोड़कर भाग निकले। दर्रे की हिफ़ाज़त करनेवाले सिपाही समझे कि लड़ाई ख़त्म हो चुकी है और अब ग़नीमत का माल[1] इकट्ठा करने का वक़्त आ गया है। उनमें से ज़्यादातर वहाँ से चले आए और प्यारे नबी (सल्ल०) के हुक्म का इन्तिज़ार नहीं किया। उधर ख़ालिद-बिन-वलीद को जो अभी मुसलमान नहीं हुए थे, मौक़ा मिल गया। वे अपने फ़ौजी दस्ते को लेकर उसी दर्रे से आए और मुसलमानों पर पीछे से हमला कर दिया। इस अचानक हमले से मुसलमान

मुसलमानों का दुश्मन हो।

1. ग़नीमत का माल : लड़ाई में दुश्मन से जो माल हासिल हो।

घबरा गए। हारी हुई फ़ौज ने जो यह देखा तो वह वापस आ गई। फिर से घमासान की लड़ाई होने लगी। इत्तिफ़ाक़ की बात कि प्यारे नबी (सल्ल॰) एक गढ़े में गिर गए। जब नबी (सल्ल॰) नज़र न आए तो किसी ने उड़ा दिया कि नबी (सल्ल॰) शहीद हो गए। अब तो मुसलमानों की हिम्मत टूट गई। लेकिन उसी वक़्त किसी की नज़र नबी (सल्ल॰) पर पड़ गई। उसने चीख़कर एलान किया कि हुज़ूर ज़िन्दा हैं। बस फिर क्या था, आहिस्ता-आहिस्ता तमाम मुसलमान नबी (सल्ल॰) के चारों तरफ़ सिमट आए। अचानक फिर लड़ाई ज़ोर पकड़ गई। प्यारे नबी (सल्ल॰) मुसलमानों को लेकर ऊपर पहाड़ पर चढ़ गए। क़ुरैश ने उसपर चढ़ना अपने लिए ठीक नहीं समझा और मक्का की तरफ़ वापस हो गए।

शहीद होनेवालों में प्यारे नबी (सल्ल॰) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) भी थे। उनके कान-नाक काट लिए गए थे। पेट फाड़ दिया गया था। इस तरह लाश की बुरी गत बनाई गई थी। यह देखकर नबी (सल्ल॰) को बड़ा दुख हुआ। नबी (सल्ल॰) के भी दो दाँत शहीद हुए थे। कुल सत्तर मुसलमान शहीद हुए और बाईस मुशरिक मारे गए।

दुश्मनों का तीसरा बड़ा हमला और ख़ंदक़ की खुदाई

मदीन के आसपास बसनेवाले यहूदी क़बीलों ने इस्लाम के ख़िलाफ़ साज़िशें शुरू कर दीं। क़ुरैश को भी उन्होंने बदला लेने के लिए उकसाया। इस तरह दो साल बाद ही चौबीस हज़ार का लश्कर मदीना की तरफ़ रवाना हो गया। उसका कमांडर अबू-सुफ़ियान था और उसमें अरब के सारे बड़े-बड़े क़बीले शामिल थे। इसी लिए उसे अहज़ाब की लड़ाई कहते हैं। 'अहज़ाब' के मानी टोला या गरोह के हैं।

इस बार प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़ैसला किया कि मैदान में निकलकर मुक़ाबला न किया जाए, बल्कि आबादी के बाहर शहर के चारों तरफ़ खाई (ख़ंदक़) खोद दी जाए और उसके अन्दर रहते हुए मुक़ाबला किया जाए। खाई की खुदाई शुरू हो गई। सहाबा (रज़ि॰) के साथ ख़ुद प्यारे नबी

(सल्ल॰) खाई खोदने में शरीक रहे। अगर सहाबा (रज़ि॰) भूख की वजह से पेट पर एक पत्थर बाँधकर ख़न्दक़ खोद रहे थे तो नबी (सल्ल॰) के पेट पर दो पत्थर बन्धे हुए थे। फिर भी सबने मिलकर ख़न्दक़ तैयार कर ली। दुश्मन भी सामने आ चुका था। ख़न्दक़ की वजह से वह आगे न बढ़ सका। उसने ख़न्दक को घेरे में ले लिया और दूर ही से तीर और पत्थर बरसाता रहा। कुछ जवानों ने ख़न्दक़ पार करने की कोशिश की, मगर उन्हें जान से हाथ धोना पड़ा। इस तरह सत्ताईस दिन गुज़र गए। अल्लाह की मेहरबानी से एक रात पानी और हवा का ऐसा सख़्त तूफ़ान आया कि दुश्मनों के ख़ेमे उड़ गए। जानवर तितर-बितर हो गए। खाने-पीने का सामान बर्बाद हो गया। ठन्डी हवाओं ने नाकों चने चबवा दिए। नतीजा यह हुआ कि जिस तेज़ी से वे आए थे, वैसे ही उन्हें वापस जाना पड़ा।

दुश्मन क़बीलों को सज़ा

इस लड़ाई में मुसलमानों को पूरी तरह पता चल गया कि कौन-कौन से क़बीले उनके दुश्मन हैं और कौन-कौन से दोस्त हैं। पड़ोस के यहूदियों ने तो खुलकर विरोध किया था। इसलिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने सबसे पहले उन्हीं से निबटना मुनासिब समझा। बनू-नज़ीर और बनू-क़ुरैज़ा पर बारी-बारी हमला करके उन्हें अच्छी तरह इस दुश्मनी का मज़ा चखा दिया गया और उन्हें इस क़ाबिल न छोड़ा गया कि फिर वे दोबारा सिर उठा सकें।

इसके बाद सन् 7 हिजरी में ख़ैबर के यहूदियों पर भी फ़ौजकशी करके उनके क़िले को जीत लिया गया। इस तरह हर वक़्त खटकनेवाला काँटा हमेशा-हमेशा के लिए निकल गया और अब मुसलमानों को कुछ चैन नसीब हुआ।

सुल्हे-हुदैबिया

सन् 6 हिजरी में प्यारे नबी (सल्ल॰) उमरा करने के मक़सद से मक्का की तरफ़ रवाना हुए। उनके साथ एक हज़ार चार सौ मुसलमान थे। रास्ते में ख़बर मिली कि क़ुरैश नबी (सल्ल॰) को मक्का में दाख़िल नहीं होने देंगे और वे एक बड़ा लश्कर लेकर आ रहे हैं। प्यारे नबी (सल्ल॰) हुदैबिया नामक

जगह पर रुक गए और मक्कावालों को कहला भेजा कि मैं लड़ने के लिए नहीं, बल्कि उमरा करने के लिए आ रहा हूँ। लेकिन मक्कावालों की समझ में कुछ न आया। आख़िरकार बड़ी दौड़-धूप के बाद नीचे लिखी शर्तों पर समझौता हुआ। इसी को 'सुल्हे-हुदैबिया (हुदैबिया का समझौता) कहते हैं।

1. इस साल मुसलमान लौट जाएँ।
2. अगले साल आएँ और सिर्फ़ तीन दिन ठहरकर चले जाएँ।
3. हथियारों से लैस न आएँ। सिर्फ़ तलवारें ला सकते हैं और वे भी म्यान में हों।
4. कोई मुसलमान अगर मक्का से मदीना जाना चाहे तो वह नहीं जा सकता। हाँ, अगर कोई मुसलमान मदीना छोड़कर मक्का में रहना चाहे तो रह सकता है।

देखने में तो इस समझौते से मुसलमानों की कमज़ोरी ज़ाहिर हो रही थी, लेकिन हक़ीक़त में यही समझौता मुसलमानों के लिए जीत का सबब बना। क़ुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने इस समझौते को 'फ़त्हे-मुबीन' (खुली हुई जीत) फ़रमाया है। अब मुसलमान दूसरे क़बीलेवालों से आज़ादी के साथ मिल-जुल सकते थे और उन्हें इस्लाम की दावत पहुँचा सकते थे। मक्का में जो मुसलमान रह गए थे, वे अब मदीना तो जा नहीं सकते थे, इसलिए मक्का से भागकर बीच ही में समुद्री तट के क़रीब आबाद होते जा रहे थे। इस तरह क़ुरैश के कारोबारी क़ाफ़िलों के लिए वे वबाले-जान बन गए थे।

मक्का की फ़त्ह

मक्कावाले दो साल तक 'सुल्हे-हुदैबिया' की शर्तों पर अमल करते रहे। लेकिन इसके बाद उन्होंने इसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी शुरू कर दी। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने जब यह देखा तो वे भी जंग की तैयारी करने लगे। आख़िरकार 10 रमज़ान सन् 8 हिजरी को नबी (सल्ल॰) दस हज़ार का लश्कर लेकर मक्का की तरफ़ रवाना हुए और शहर से कुछ मील की दूरी पर पड़ाव डाल दिया। इतनी ख़ामोशी के साथ लश्कर ने सफ़र किया कि कानों-कान किसी को ख़बर न हो सकी। मक्कावालों ने जब इतना बड़ा लश्कर सिर पर देखा

तो उनके हाथों के तोते उड़ गए। उनका सरदार अबू-सुफ़ियान ख़ुद रात के अन्धेरे में लश्कर का अन्दाज़ा लगाने के लिए आया, मगर वह पहचान लिया गया। उसे गिरफ़्तार करके प्यारे नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में पेश कर दिया गया। अबू-सुफ़ियान के इस्लाम-दुश्मनी के तमाम कारनामे नज़रों के सामने थे, जिनके नतीजे में क़त्ल की सज़ा मिलनी चाहिए थी। लेकिन रहमते-आलम (सल्ल०) ने मुस्कुराते हुए एक नज़र डाली और फ़रमाया—

"अबू-सुफ़ियान जाओ, आज तुम्हारे सारे क़ुसूर माफ़ किए जाते हैं। सिर्फ़ इतना ही नहीं, बल्कि जो तुम्हारे घर में दाख़िल हो जाएगा उसे भी पनाह दी जाएगी।"

सुबह होते ही मुसलमानों का लश्कर शहर में दाख़िल होना शुरू हो गया। इसी शहर ने एक दिन हुज़ूर (सल्ल०) को देश से निकाल दिया था और आज उसी शहर में नबी (सल्ल०) फ़ातेह (विजयी) बनकर दाख़िल हो रहें थे। मगर इस शान से कि गर्दनें शुक्र और एहसान के बोझ से झुकी हुई थीं और ज़बान पर ये बोल थे—

"सारी तारीफ़ें उस अल्लाह की हैं जिसने अपने कलिमे को बुलन्द किया। अपने बन्दों की मदद की और दुश्मनों को कुचल दिया।"

आगे-आगे एलान हो रहा था। "जो आदमी हथियार डाल देगा या अबू-सुफ़ियान के यहाँ पनाह लेगा या अपना दरवाज़ा बन्द कर देगा उसे पनाह दी जाएगी।"

काबा को बुतों से पाक कर दिया गया। नमाज़ का वक़्त हुआ तो प्यारे नबी (सल्ल०) के हुक्म से हज़रत बिलाल (रज़ि०) ने काबा की दीवार पर चढ़कर अज़ान दी और काबा ही में नमाज़ अदा की गई। आज काबा का उस तरह एहतिराम (सम्मान) किया गया, जैसा उसका हक़ था।

और दूसरी लड़ाइयाँ

मक्का फ़त्ह होने के बाद अरब के कोने-कोने से लोग आना शुरू हो गए और इस्लाम क़बूल करते गए। इस तरह सारे अरब में इस्लाम का डंका बजने लगा।

इसी बीच सरकश और बाग़ी क़बीलों ने बग़ावत शुरू कर दी। हुनैन नामक जगह पर उनके सिर कुचल दिए गए।

मुअ्ता के हाकिम ने मुसलमानों के नुमाइन्दे को शहीद कर दिया था। उसको इस जुर्म की सज़ा देने के लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने एक फ़ौज रवाना की। मुअ्ता के मक़ाम पर दोनों फ़ौजों में घमासान की लड़ाई हुई। उसी में हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰), हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) और हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि॰) शहीद हुए। आख़िरकार हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) ने, जो मक्का फ़तह होने के बाद मुसलमान हो गए थे, इस लड़ाई को जीत लिया।

उसी मौक़े पर तबूक की लड़ाई भी हुई, जिसकी वजह से मुसलमानों को और ज़्यादा सरबुलन्दी हासिल हुई और बड़ी-बड़ी हुकूमतों पर मुसलमानों की छोटी-सी हुकूमत की धाक बैठ गई।

नबी (सल्ल॰) का हज (हज्जतुल-वदाअ)

हिजरत का दसवाँ साल था। उस साल प्यारे नबी (सल्ल॰) ने हज का इरादा किया तो एक लाख चौबीस हज़ार मुसलमान आप (सल्ल॰) के साथ जाने के लिए तैयार हो गए। हर तरफ़ मुसलमान ही मुसलमान नज़र आ रहे थे। इस्लाम की यह कामयाबी देखकर हुज़ूर (सल्ल॰) को एहसास होने लगा कि अब उनका काम पूरा हो चुका और इस दुनिया से वापस जाने का वक़्त क़रीब आ गया है।

इतना बड़ा क़ाफ़िला मंज़िल-पर-मंज़िल तय करता हुआ मक्का पहुँच गया। सबने प्यारे नबी (सल्ल॰) के साथ हज किया। इसी मौक़े पर हुज़ूर (सल्ल॰) ने अपना मशहूर ख़ुत्बा दिया। नबी (सल्ल॰) ऊँटनी पर सवार थे। सब लोग उनके पास अरफ़ात के मैदान में जमा थे। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "ऐ लोगो! मेरी बात को अच्छी तरह समझ लो। हो सकता है कि आज के बाद यहाँ तुमसे न मिल सकूँ। लोगो! अरबी को ग़ैर-अरबी पर, ग़ैर-अरबी को अरबी पर, गोरे को काले पर और

काले को गोरे पर कोई बड़ाई नहीं। बड़ाई तो उसे हासिल है जो खुदा से ज़्यादा डरनेवाला है। मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं। जो खुद खाओ वही अपने ग़ुलाम को खिलाओ, जो खुद पहनो वही उनको पहनाओ। मैं तुममें दो चीज़ें छोड़ जाता हूँ, अगर तुमने उसे मज़बूत पकड़ लिया तो राह से न भटकोगे—वे दो चीज़ें अल्लाह की किताब और मेरी सुन्नत है।"

इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने सब मालूम किया—

"क्या मैंने पैग़ाम पहुँचा दिया?"

हज़ारों ज़बानों ने जवाब दिया—

"बेशक आपने पहुँचा दिया।"

फिर नबी (सल्ल॰) ने आसमान की तरफ़ उँगली उठाई और फ़रमाया—

"ऐ अल्लाह, तू गवाह रहना!"

नबी (सल्ल॰) को अल्लाह ने वापस बुला लिया

हज से वापस आने के बाद 'सफ़र' की आख़िरी तारीख़ों में नबी (सल्ल॰) को बहुत तेज़ बुख़ार आया और सिर में सख़्त दर्द शुरू हो गया। इलाज के बावजूद दर्द में कमी न आई। बीमारी रोज़-ब-रोज़ बढ़ती गई। तकलीफ़ की ज़्यादती से वे बार-बार बेहोश हो जाते। आख़िरकार हिजरत के ग्यारहवें साल रबीउल-अव्वल की बारहवीं तारीख़ को सोमवार के दिन प्यारे नबी (सल्ल॰) इस दुनिया से कूच कर गए।

इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन

"बेशक हम अल्लाह ही के हैं और उसी की तरफ़ लौटकर जानेवाले हैं।"

उस वक़्त नबी (सल्ल॰) की उम्र 63 साल की थी। उसी हुजरे (कमरे) में उनको दफ़न कर दिया गया, जिसमें वे रहते थे। अब यही रौज़-ए-नबवी कहलाता है।

दुरूद हो प्यारे नबी पर! सलाम हो प्यारे नबी पर!

उम्मत की माएँ

प्यारे नबी (सल्ल०) की बीवियाँ उम्मत की माएँ (उम्महातुल-मुमिनीन) कहलाती हैं। उनके नाम ये हैं–

1. हज़रत ख़दीजा (रज़ि०)

वे प्यारे नबी (सल्ल०) की पहली बीवी थीं। हुज़ूर (सल्ल०) उनसे बहुत मुहब्बत करते थे। वे बेवा थीं। उनका इन्तिक़ाल प्यारे नबी (सल्ल०) के सामने दस नबवी में हुआ।

2. हज़रत आइशा (रज़ि०)

वे प्यारे नबी (सल्ल०) की बहुत चहीती बीवी थीं। वे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की बेटी थीं। उनका इन्तिक़ाल 57 हिजरी में हुआ।

3. हज़रत सौदा (रज़ि०)

वे भी बेवा थीं और उम्र में हुज़ूर (सल्ल०) से बड़ी थीं। उनका इन्तिक़ाल सन् 19 हिजरी में हुआ।

4. हज़रत हफ़्सा (रज़ि०)

वे हज़रत उमर (रज़ि०) की बेटी थीं। उनके शौहर बद्र की लड़ाई में मारे गए थे। इसके बाद उनकी शादी प्यारे नबी (सल्ल०) से हुई। इन्तिक़ाल 41 हिजरी में हुआ।

5. हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-ख़ुज़ैमा (रज़ि०)

उनके शौहर उहुद की लड़ाई में मारे गए। फिर उन्होंने प्यारे नबी (सल्ल०) से निकाह कर लिया। इन्तिक़ान सन् 3 हिजरी।

6. हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि०)

वे भी बेवा थीं। उहुद की लड़ाई के बाद उनकी शादी नबी (सल्ल०) के साथ हुई। इन्तिक़ाल सन् 63 हिजरी।

7. हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहश (रज़ि०)

वे प्यारे नबी (सल्ल०) की फूफीज़ाद बहन थीं। तलाक़ के बाद प्यारे नबी (सल्ल०) से निकाह हुआ। इन्तिक़ाल सन् 20 हिजरी में 53 साल की

उम्र में हुआ।

8. हज़रत जुवैरिया (रज़ि॰)

वे क़बीला बनी-मुस्तलिक़ के सरदार की बेटी थीं और उनके शौहर का इन्तिक़ाल हो गया था। फिर नबी (सल्ल॰) के साथ ब्याहीं। इन्तिक़ाल सन् 56 हिजरी, उम्र 70 साल।

9. हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि॰)

वे अबू-सुफ़ियान की बेटी थीं। जब उनके शौहर का इन्तिक़ाल हो गया तो नबी (सल्ल॰) से शादी कर ली। इन्तिक़ान सन् 45 हिजरी।

10. हज़रत सफ़िय्या (रज़ि॰)

वे ख़ैबर के सरदार की बेटी थीं। बेवा होने पर नबी (सल्ल॰) से शादी कर ली। इन्तिक़ाल 50 हिजरी।

11. हज़रत मैमूना (रज़ि॰)

बेवा होने के बाद हुज़ूर से निकाह हुआ। इन्तिक़ाल सन् 51 हिजरी।

12. हज़रत मारिया क़िब्तिया (रज़ि॰)

वे पहले लौंडी थीं। उनको मिस्र के बादशाह मुक़ौक़िस ने भेजा था। उनका इन्तिक़ाल सन् 16 हिजरी में हुआ।

प्यारे नबी (सल्ल॰) की औलाद

1. हज़रत क़ासिम (रज़ि॰)

मुहम्मद (सल्ल॰) के नबी होने से ग्यारह-ग्यारह साल पहले पैदा हुए और सिर्फ़ सात दिन ज़िन्दा रहे। उन्हीं की निस्बत से नबी (सल्ल॰) अबुल-क़ासिम कहलाते हैं।

2. हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰)

मुहम्मद (सल्ल॰) के नबी होने से दस साल पहले पैदा हुईं। ख़ाला के लड़के अबुल-आस-बिन-रबीअ़ से उनका निकाह हुआ। सन् 8 हिजरी में इन्तिक़ाल हुआ।

3. हज़रत रुक़य्या (रज़ि॰)

मुहम्मद (सल्ल॰) के नबी होने से पहले पैदा हुईं। उनका दूसरा निकाह हज़रत उसमान (रज़ि॰) से हुआ। सन् 3 हिजरी में वे इस दुनिया से कूच कर गईं।

4. हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि॰)

हज़रत रुक़य्या (रज़ि॰) के इन्तिक़ाल के बाद उनका निकाह भी हज़रत उसमान (रज़ि॰) से हुआ। सन् 9 हिजरी में उनका इन्तिक़ाल हुआ।

5. हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰)

प्यारे नबी (सल्ल॰) की नुबूवत से एक साल पहले पैदा हुईं। शादी हज़रत अली (रज़ि॰) से हुई। हज़रत हसन (रज़ि॰) और हज़रत हुसैन (रज़ि॰) हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) के साहबज़ादे थे। इन्तिक़ान संन् 11 हिजरी में हुआ।

6. हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰)

नुबूवत के ज़माने में पैदा हुए। तय्यब और ताहिर के लक़ब से मशहूर हुए। बहुत कम उम्र पाई।

7. हज़रत इबराहीम (रज़ि॰)

सन् 8 हिजरी में पैदा हुए। प्यारे नबी (सल्ल॰) को उनसे बहुत मुहब्बत थी। डेढ़ साल के होकर इन्तिक़ाल हुआ।

सिर्फ़ हज़रत इबराहीम हज़रत मारिया क़िबतिया (रज़ि॰) से पैदा हुए और बाक़ी छह औलादें हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) से थीं।

हमारे हुज़ूर क्या लाए?

अल्लाह तआला ने हमारे हुज़ूर (सल्ल॰) को अपना आख़िरी नबी बनाया। अपने बन्दों की हिदायत के लिए नबी (सल्ल॰) पर अपना आख़िरी पैग़ाम—क़ुरआन मजीद—उतारा। उसमें हमें तीन बुनियादी बातें बताई गई हैं—

1. तौहीद 2. रिसालत 3. आख़िरत

1. तौहीद

इस बात पर ईमान लाना कि अल्लाह एक है। उसका कोई शरीक नहीं। सारा जहान उसी ने बनाया है। वही उसका अकेला मालिक है। वही सबको रोज़ी देता है। सारे जहान पर उसी का हुक्म चलता है। वही सबको ज़िन्दा करता है और वही मारता है। सारी इज़्ज़त और ज़िल्लत उसी के इख़्तियार में है। वह किसी को फ़ायदा पहुँचाना चाहे तो उसे कोई रोक नहीं सकता और अगर नुक़सान पहुँचाना चाहे तो उसे कोई बचा नहीं सकता। उसके फ़ैसले अटल होते हैं। इस सिलसिले में क़ुरआन मजीद हमें हिदायत देता है कि—

> "कहो, वह अल्लाह अकेला है। वह बेनियाज़ है (किसी का मुहताज नहीं, सब उसके मुहताज हैं) न उसकी कोई औलाद है और न वह किसी की औलाद है और कोई उसके जैसा नहीं।" (क़ुरआन, सूरा-112 इख़लास)
>
> "अल्लाह के सिवा कोई ख़ुदा नहीं है, वह हमेशा से है (और) पूरी दुनिया को सँभाले हुए है। वह न सोता है, न उसे ऊँघ आती है। ज़मीन और आसमान में जो कुछ है, सब उसी का है। उसके सामने उसकी इजाज़त के बग़ैर कोई सिफ़ारिश नहीं कर सकता। (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-255)
>
> "और तुम सब अल्लाह ही की बन्दगी करो और उसके साथ किसी चीज़ को शरीक न बनाओ।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)
>
> "तुम्हारा इलाह एक ही है, उसी के फ़रमाँबरदार बन जाओ और नर्मी का रवैया अपनानेवालों को ख़ुशख़बरी सुना दो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-34)
>
> "बेशक, अल्लाह सब कुछ सुनता है और देखता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-58)
>
> "वह तुम्हारे खुले और छिपे सब हाल जानता है। और जो बुराई या भलाई तुम कमाते हो, उसे भी अच्छी तरह जानता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-3)

"उसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं है, वही ज़िन्दगी देता है और वही मौत देता है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-158)

"पाक व बरतर है वह अल्लाह जिसके हाथ में हर चीज़ का इख़्तियार है और उसी की तरफ़ सब लौटाए जाओगे।" (क़ुरआन, सूरा-36 यासीन, आयत-83)

"कहो कि ऐ अल्लाह! बादशाही के मालिक! तू जिसको चाहे हुकूमत दे और जिससे चाहे छीन ले और जिसको चाहे इज़्ज़त दे और जिसे चाहे ज़लील करे। हर तरह की भलाई तेरे ही हाथ में है और बेशक तू हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-26)

"और अगर अल्लाह तुमको किसी तरह का नुक़सान पहुँचाए तो उसके सिवा कोई नहीं जो तुम्हें उस नुक़सान से बचा सके, और अगर वह तुम्हें कोई भलाई पहुँचाए (तो कोई उसे रोकनेवाला नहीं) वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। उसे अपने बन्दों पर पूरा इख़्तियार हासिल है, और वह जानता और ख़बर रखता है।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-17, 18)

"अगर ज़मीन और आसमान में अल्लाह के सिवा दूसरे ख़ुदा होते तो (ज़मीन और आसमान) दोनों का निज़ाम बिगड़ जाता।" (क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-22)

"लोगो! इसी (किताब) की पैरवी करो जो तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमपर उतरी है। इसके अलावा दूसरे सरपरस्तों की पैरवी न करो।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-3)

"अल्लाह जैसा चाहता है फ़ैसला करता है, कोई उसके फ़ैसले को टालनेवाला नहीं। और वह जल्द हिसाब लेनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-41)

2. रिसालत (पैग़म्बरी)

इस बात पर यक़ीन रखना कि अल्लाह ने जितने भी नबी और रसूल भेजे वे सब सच्चे थे, उनकी लाई हुई किताबें भी सच्ची थीं। प्यारे नबी

मुहम्मद (सल्ल॰) सबसे आख़िरी नबी हैं। क़ुरआन मजीद अल्लाह की आख़िरी किताब है। मुहम्मद (सल्ल॰) के बाद न कोई नबी आया है और न क़ियामत तक आएगा। क़ुरआन मजीद में न कोई तबदीली हुई है और न कभी होगी। इसकी हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी अल्लाह ने खुद ले ली है। इसलिए अब नबी (सल्ल॰) ही की पैरवी में तमाम इनसानों की भलाई है। जैसा कि खुद अल्लाह फ़रमाता है—

"(ऐ मुहम्मद!) कहो कि लोगो! मैं तुम सबकी तरफ़ उस अल्लाह का पैग़म्बर हूँ जो आसमानों और ज़मीन का बादशाह है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-158)

"वे (प्यारे नबी सल्ल॰) अल्लाह के रसूल और नबियों के समापक (आख़िरी नबी) हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-40)

"(ऐ नबी!) कह दो कि हम अल्लाह को मानते हैं, और उस किताब को मानते हैं, जो हमपर उतारी गई है। उन किताबों को भी मानते हैं जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और याक़ूब की औलाद पर उतारी गई थीं। और हम उन हिदायतों पर भी ईमान रखते हैं जो मूसा, ईसा और दूसरे पैग़म्बरों को उनके रब की तरफ़ से दी गईं। हम उनमें से किसी के बीच फ़र्क़ नहीं करते।"(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-84)

"वे (हज़रत मुहम्मद) अपनी तरफ़ से कुछ नहीं कहते। (वे जो कहते हैं) वह तो सिर्फ़ वह वह्य होती है जो उनपर नाज़िल की जाती है।" (क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयत-3, 4)

"(ऐ नबी! लोगो से) कहो कि अगर तुम हक़ीक़त में अल्लाह से मुहब्बत रखते हो तो मेरी पैरवी करो। अल्लाह तुमसे मुहब्बत करेगा और तुम्हारी ग़लतियों को माफ़ कर देगा।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-31, 32)

3. आख़िरत

इस हक़ीक़त पर यक़ीन रखना कि एक दिन यह दुनिया तहस-नहस हो

जाएगी। फिर दोबारा सारे इनसान-ज़िन्दा किए जाएँगे। अल्लाह के सामने सबकी पेशी होगी। हमारा एक-एक अमल चाहे अच्छा हो या बुरा, हमारे सामने लाया जाएगा। उनका हिसाब-किताब होगा। जिनके अमल अच्छे होंगे, उनसे अल्लाह राज़ी होगा और उन्हें जन्नत देगा और जिनके अमल बुरे होंगे, उनसे वह नाराज़ होगा और उन्हें दोज़ख़ में डालेगा। अल्लाह की मरज़ी के बिना किसी की सिफ़ारिश काम न आएगी। इस बारे में क़ुरआन मजीद हमें बताता है—

"क़ियामत आकर रहेगी, इसमें किसी शक की गुंजाइश नहीं है, और अल्लाह सब लोगों को जो क़ब्रों में हैं ज़िन्दा करेगा।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-7)

"वही तुमको मारता है, फिर वही तुमको ज़िन्दा करेगा, फिर उसी की तरफ़ तुम्हें लौटकर जाना है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-28)

"मगर तुम लोग दुनिया की ज़िन्दगी को तरजीह देते हो, हालाँकि आख़िरत ज़्यादा अच्छी और बाक़ी रहनेवाली है।"

(क़ुरआन, सूरा-87 आला, आयत-16, 17)

"तो जिसने ज़र्राभर नेकी की होगी, वह उसको देख लेगा और जिसने ज़र्राभर बुराई की होगी, वह उसको देख लेगा।"

(क़ुरआन, सूरा-99 ज़िलज़ाल, आयत-7, 8)

"और आमाल-नामा सामने रख दिया जाएगा। उस वक़्त गुनाहगारों को तुम देखोगे कि जो कुछ उसमें लिखा है उससे डर रहे होंगे और कह रहे होंगे कि हाय हमारी कमबख़्ती, यह कैसी किताब है कि हमारी कोई छोटी-बड़ी हरकत ऐसी नहीं है जो इसमें दर्ज न हो गई हो। जो उन्होंने किया था वह सब अपने सामने मौजूद पाएँगे। और तेरा रब किसी पर ज़रा-भी ज़ुल्म नहीं करेगा।" (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-49)

"उस दिन उनकी अपनी ज़बानें और उनके अपने हाथ-पाँव उनके करतूतों की गवाही देंगे।" (क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-24)

"हक़ीक़त यह है कि जो अपराधी बनकर अपने रब के सामने हाज़िर होगा, उसके लिए जहन्नम है, जिसमें न वह जिएगा और न मरेगा।" (क़ुरआन, सूरा-20 ता॰ हा॰, आयत-74)

"और उनको खौलता हुआ पानी पिलाया जाएगा जो उनकी अन्तड़ियों को काट डालेगा।"

(क़ुरआन, सूरा-47 मुहम्मद, आयत-14)

"और खाने के लिए उनको काँटेदार झाड़ के अलावा और कुछ न मिलेगा, जिससे न बदन को ताक़त मिलेगी और न भूख ही दूर होगी।" (क़ुरआन, सूरा-88 ग़ाशिया, आयत-6, 7)

"ऐ ईमानवालो! जो माल-दौलत हमने तुम्हें दिया है, उसमें से उस दिन के आने से पहले ही (नेक कामों में) ख़र्च कर लो, जिस दिन न (अमल को) ख़रीदा-बेचा जा सकेगा, न दोस्ती काम आएगी और न सिफ़ारिश चलेगी।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-254)

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने क्या फ़रमाया?

प्यारे नबी (सल्ल॰) ने बहुत अच्छी-अच्छी बातें बताई हैं। कुछ आप भी सुनिये–

1. सबसे अच्छा मुसलमान वह है जिसके अख़लाक़ सबसे अच्छे हों।
2. बड़ों का अदब छोटो से प्यार। जो ऐसा न करे वह हममें से नहीं।
3. जो लोगों पर रहम नहीं करता, अल्लाह उसपर रहम नहीं करता।
4. दीन नाम है ख़ैरख़ाही यानी दूसरे का भला चाहने का।
5. किसी की मुसीबत पर न हँसो, ऐसा न हो कि तुम ख़ुद उसमें फँस जाओ।
6. अपने मुसलमान भाई से मुस्कुराते हुए मिलना नेकी है।
7. दो आदमियों के बीच सुलह करो दो, यह भी नेकी है।
8. जब कोई किसी की ग़लती माफ़ करता है तो अल्लाह उसकी इज़्ज़त बढ़ा देता है।

9. जो अपने लिए पसन्द करो, वही दूसरों के लिए भी पसन्द करो।
10. जन्नत माँ के क़दमों के नीचे है।
11. माँ-बाप को बुरा-भला कहना बहुत बड़ा गुनाह है।
12. माँ-बाप के दोस्तों के साथ अच्छा सुलूक करो।
13. इस तरह ज़िन्दगी बसर करो कि तुम्हारे दिल में किसी की तरफ़ से मैल न हो।
14. चुग़ली करनेवाला जन्नत में न जाएगा।
15. हसद (ईर्ष्या) से बचो, हसद नेकियों को इस तरह खा जाता है जैसे आग लकड़ी को।
16. बदगुमानी से बचो, (यह) बहुत बड़ा झूठ है।
17. झूठ सबसे बड़ा गुनाह है।
18. सच बोलो, चाहे अपना ही नुक़सान हो।
19. घमन्डी जन्नत में न जाएगा।
20. बाज़ार में खाते फिरना बेशर्मी की बात है।
21. गाली बकनेवाले से अल्लाह तआला नफ़रत करता है।
22. बुरी बात कहने से ख़ामोश रहना अच्छा है।
23. अल्लाह के नज़दीक सबसे बुरा वह है जो लड़ाका और झगड़ालू हो।
24. सलाम किया करो। इससे मुहब्बत बढ़ती है।
25. सलाम में पहल करनेवाला अल्लाह से ज़्यादा क़रीब होता है।
26. भला वह है जिसे साथी भला कहें।
27. पहलवान वह है जो अपने ग़ुस्से पर क़ाबू पा ले।
28. बुरे साथी से अकेला रहना ही अच्छा है।
29. हर मुसलमान मर्द और औरत पर इल्म हासिल करना फ़र्ज़ है।
30. जिससे इल्म सीखो उसकी इज़्ज़त करो।
31. जाहिल से बढ़कर कोई मुहताज नहीं, इल्म से बढ़कर कोई दौलत नहीं।
32. अन्धे को ग़लत रास्ता बतानेवाले पर लानत है।
33. पेट तमाम बीमारियों का घर है।
34. परहेज़ अस्ल इलाज है।

35. खाना शुरू करने से पहले और खाना खाने के बाद हाथ धोने से बरकत होती है।
36. उलटे हाथ से खाना-पीना शैतान का काम है।
37. पानी तीन साँसों में पिया करो, जब पीने लगो तो बिसमिल्लाह पढ़ो और जब पी चुको तो अल्लाह का शुक्र अदा करो।
38. कोई चीज़ पीते वक़्त बर्तन में साँस न लिया करो।
39. पेट के बल औंधे लेटने से नबी (सल्ल॰) नाराज़ हुआ करते थे।
40. किसी को अपनी सवारी पर बिठा लो, यह भी नेकी है।

●●●